सत्य की प्यास

प्रवचन-क्रम

1. स्वतंत्रता--विचार की, विवेक की..2
2. प्रार्थना का अर्थ...15
3. सरलता..30
4. आत्म-विस्मरण नहीं, आत्म-स्मरण...44
5. शून्यता..61
6. अभय..75

सत्य की प्यास
पहला प्रवचन

स्वतंत्रता--विचार की, विवेक की

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी चर्चा को शुरू करना चाहूंगा।
बहुत वर्षों पहले की बात है, एक बूढ़ा व्यक्ति अंधा हो गया, उसकी आंखें चली गईं। उसकी उम्र सत्तर को पार कर चुकी थी। उसके आठ लड़के थे, आठ लड़कों की बहुएं थीं, पत्नी थी। उसके मित्रों ने, उसके परिवार के लोगों ने समझाया, आंखों का इलाज करवा लें। लेकिन उस बूढ़े आदमी ने कहा कि अब मेरी आंखों का उपयोग भी क्या, बूढ़ा हो गया हूं। फिर मेरे आठ लड़के हैं, उनकी सोलह आंखें हैं; मेरी आठ बहुएं हैं, उनकी सोलह आंखें हैं; मेरी पत्नी है; ऐसा मेरे घर में चौंतीस आंखें हैं। क्या चौंतीस आंखों से मेरा काम नहीं चल सकेगा? और मेरी दो आंखें न भी हुईं तो फर्क क्या पड़ता है!
बात ठीक ही थी। घर में चौंतीस आंखें थीं, दो आंखें न हुईं तो कौन सा फर्क पड़ेगा? उसे बूढ़े ने जिद्द की और अपनी आंखों का उपचार नहीं करवाया। लेकिन पंद्रह दिन ही बीते होंगे कि उस बड़े भवन में आग लग गई जिसका वह निवासी था। वे बत्तीस, चौंतीस आंखें आग लगते ही घर के बाहर हो गईं। और उन चौंतीस आंखों में से किसी को भी यह ख्याल न आया कि एक बूढ़ा आदमी भी घर के भीतर है जिसके पास आंखें नहीं हैं। जब वे बाहर पहुंच गए, आग के बाहर हो गए-- लड़के और बहुएं और पत्नी, तब उन्हें स्मरण आया कि घर का वृद्ध व्यक्ति घर में छूट गया है। लेकिन तब कुछ भी करना संभव न था। लौटने की कोई गुंजाइश न थी। और जब सभी लोग बाहर रह गए, निकल गए उस बूढ़े आदमी को छोड़ कर, और जब आग की लपटें उस अंधे आदमी को जलाने लगीं और वह अंधा आदमी भागने लगा और दरवाजा मिलना मुश्किल हो गया, तब उस बूढ़े को भी स्मरण आया कि जब आग लगी हो तो अपनी ही आंखें काम पड़ सकती हैं किसी और की आंखें नहीं। लेकिन तब बहुत देर हो चुकी थी। और उस बूढ़े आदमी को उस आग से भरे हुए मकान में जल जाना पड़ा। उसके मन में कौन से ख्याल रहे होंगे मरते वक्त? कौन सा विचार रहा होगा मरते वक्त? अपनी आंख होती तो वह बाहर हो सकता था। परायी आंख आग लगे हुए मकान में बाहर निकलने के काम नहीं आ सकती।
इस कहानी से इसलिए शुरू करता हूं, जीवन भी करीब-करीब आग लगा हुआ मकान है। किसी को लपटें दिखाई पड़ती हैं, किसी को नहीं। लेकिन चौबीस घंटे हम एक जलते हुए मकान के भीतर हैं। कोई आज जल जाएगा, कोई कल जल जाएगा, कोई परसों जल जाएगा। देर होगी, किसी को थोड़ा समय लगेगा, लेकिन जिस मकान के हम भीतर हैं, वह मकान आज नहीं कल जलाने वाला सिद्ध होने को है। क्योंकि चाहे और कुछ अनिश्चित हो, एक बात निश्चित है कि जिसे हमने मकान समझा है वह हमारी चिता सिद्ध होगा। और जिसे हमने जीवन जाना है वह हमारी मृत्यु बनेगा। और हम रोज, चाहे हम कुछ भी कर रहे हैं, चाहे हम भजन गा रहे हों और चाहे गीता पढ़ रहे हों और चाहे दुकान कर रहे हों और चाहे मंदिर में बैठे हों, हम जो भी कर रहे हैं, हमारा सब किया हुआ हमें मौत के करीब ले जा रहा है। हम जो भी कर रहे हैं। चाहे हम एक सिनेमागृह में बैठे हों और चाहे एक मंदिर में बैठे हों, बीता हुआ सब समय हमें मौत के करीब पहुंचा रहा है। इससे कोई भेद नहीं पड़ता है कि आप क्या कर रहे हैं, एक बात तय है, आप कुछ भी कर रहे हों आपका सब करना मृत्यु के निकट ले जा रहा है।
मकान जल रहा है और आज नहीं कल आप उसके साथ जलेंगे। क्या इस जीवन के जलते हुए मकान में किसी दूसरे की आंखें आपके काम आ सकती हैं? चाहे वे आंखें राम की हों और चाहे कृष्ण की और चाहे मोहम्मद की हों और चाहे क्राइस्ट की, चाहे महावीर की, वे आंखें अगर आपकी नहीं हैं, तो आप स्मरण रखिए, वे आपके काम नहीं आ सकतीं। किसी दूसरे की आंख किसी दूसरे के काम नहीं आ सकतीं। यह असंभव है कि किसी दूसरे के काम आ जाए। इससे बड़ी और कोई असंभावना, इससे बड़ी कोई इंपासिबिलिटी नहीं है कि मैं आपकी आंखों से देख लूं, कि आपकी आंखों से चल लूं। लेकिन सत्य की खोज में, जीवन की खोज में हम दूसरों की उधार आंखों से चलना चाहते हैं। हमारा जितना ज्ञान है, वह सब

उधार, बारोड। हमारी जितनी समझ है, वह हमारी नहीं किसी और की है। अज्ञान हमारा है, ज्ञान दूसरों का। दूसरों के ज्ञान से हमारा अज्ञान नहीं मिटेगा। चलना हमें हैं, आंखें दूसरों की हैं। रास्ता हमारा है, मकान हमारा है, जिसमें आग लगी है और हम गिरे हैं, मैं घिरा हूं और आंखें आपकी हैं। जिंदगी का सारा दुख यही है, अज्ञान हमारा है और ज्ञान दूसरों का है। जीवन का सारा कंटरडिक्शन, जीवन का सारा विरोध यही है, अंधकार हमारा है, प्रकाश दूसरों का है।
दूसरों का प्रकाश हमारे अंधकार को मिटाने में असमर्थ है। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं दूसरों के द्वारा दिए गए प्रकाश का अपमान कर रहा हूं। नहीं, मैं तो केवल एक तथ्य की बात यह कह रहा हूं कि दूसरों का प्रकाश केवल दूसरों का प्रकाश है आपका नहीं। अंधकार आपका है, अज्ञान आपका है। तो इस अज्ञान को, इस अंधकार को मिटाने का एक ही उपाय है कि किसी भांति आपकी अपनी आंख खुल सके और आपका अपना ज्ञान पैदा हो सके। अन्यथा जीवन में तो शायद पता नहीं चलेगा लेकिन मृत्यु के क्षण में ज्ञात होगा कि कोई ज्ञान काम नहीं आया।
जैसे उस बूढ़े आदमी को जब आग लग गई घर में तब पता चला कि दूसरों की आंखें सहयोगी सिद्ध नहीं हुईं, वैसे ही मृत्यु के क्षण में सभी को ज्ञात होता है कि सभी शास्त्र, सभी ज्ञान, वह सब जो सीख लिया था, जो अपना नहीं था, वह काम नहीं पड़ता है, वह कभी काम नहीं पड़ा है। वह हमारे मरने के पहले ही व्यर्थ हो जाता है। वह व्यर्थ था ही। सच यह है कि जीवन की अनुभूतियां जब तक अनुभव न की जाएं तब तक उस संबंध में हम जो भी जानते हैं वह न जानने से भी बदतर है। अज्ञान बेहतर है दूसरों के ज्ञान से। क्यों? अज्ञान इसलिए बेहतर है कि अगर कोई अपने अज्ञान को ठीक से जानें, तो वह अज्ञान ही इतनी पीड़ा से भर देगा कि ज्ञान की खोज पैदा हो जाएगी। अगर कोई अपने अज्ञान से परिचित हो जाए, तो वह वैसे ही है जैसे कोई अपनी बीमारी से परिचित हो जाए। जो अपनी बीमारी से परिचित हो जाता है वह स्वास्थ्य की दिशा में खोज शुरू कर देता है। लेकिन जिस आदमी को यही पता न हो कि वह बीमार है, उसकी स्वास्थ्य की खोज भी प्रारंभ नहीं होती। और जिसने अपनी बीमारी को छिपा लिया हो, वह तो आत्मघाती है। क्योंकि छिपी हुई बीमारी धीरे-धीरे बढ़ती है और प्राणों तक फैल जाती है। और हम इस भ्रम में होते हैं कि बीमारी नहीं है।
दूसरों के ज्ञान से हमारा अज्ञान छिप जाता है मिटता नहीं। और छिपा हुआ अज्ञान खतरनाक है। खतरनाक इसलिए है कि छिपा हुआ अज्ञान प्राणों में फैलता चला जाता है। ऊपर से शास्त्र कंठस्थ हो जाते हैं, गीता, कुरान और बाइबिल याद हो जाते हैं। और सुंदर-सुंदर वचन, और सुंदर-सुंदर सिद्धांत हमारी स्मृति में घर कर लेते हैं और हम उन्हीं को दोहराने लगते हैं। यह सारी लर्निंग, यह सारा सिखावट, यह सारी सब झूठी बातें हैं। क्योंकि हमारे प्राणों में गहन अज्ञान होता है। जिसे हम दूसरे के ज्ञान से ढंक लेते हैं और छिपा लेते हैं लेकिन मिटा नहीं पाते।
कोई मिटा नहीं सकता है इसे भांति। और तब बुद्धि ज्ञान से भर जाती है
और आत्मा अज्ञान में डूबी रहती है। हमारे पंडित का क्या, हमारे सारे पांडित्य का, हमारी सारी समझ का, हमारी सारी जानकारी का और क्या प्रयोजन हुआ है सिद्ध? एक ही बात हुई है, हम अपने अज्ञान को छिपाने में समर्थ हो जाते हैं। और यह सर्वाधिक दुखद स्थिति है जिसमें मनुष्य पड़ सकता है। इसलिए आज की सुबह में प्रार्थना करूंगा, ज्ञान से मुक्त हो जाएं, अगर
सच में ज्ञान पाना हो। जो ज्ञान से मुक्त नहीं होता, वह कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं होगा। दूसरों की आंखों से मुक्त हो जाएं, अगर अपनी आंख खोजनी हो। दूसरों की आंख का सहारा छोड़ दें, अगर तलाश करनी हो इस बात की कि क्या मेरे पास भी कोई आंख है जो खोली जा सके। क्योंकि जो दूसरों का सहारा पकड़ लेता है वह फिर अपना सहारा खो देता है। और जो दूसरों का हाथ पकड़ कर चलने लगता है उसे यह ख्याल ही भूल जाता है कि मैं भी चल सकता था अपने पैरों से। और जो निर्भर हो जाता है दूसरों के ज्ञान पर वह धीरे-धीरे यह भूल ही जाता है कि अपना ज्ञान, अपनी अनुभूति जैसी भी कोई घटना हो सकती थी, यह स्मृति ही उसे भूल जाती है।

और जीवन का एक सरल सा सूत्र हैः हम जीवन की जिस ऊर्जा और शक्ति का उपयोग करना बंद कर देते हैं वह शक्ति अगर जागती भी हो तो सो जाती है। अगर कोई आदमी दो-चार वर्ष तक अपनी आंखें बंद करके बैठ जाए और देखने का उपयोग न ले आंखों से, तो भली आंखें भी धीरे-धीरे मंदी पड़ जाएंगी, फीकी पड़ जाएंगी और समाप्त हो जाएंगी। कोई अपने पैरों को बांध ले और दो-चार वर्ष तक चलने का उपयोग न ले, तो चलते हुए स्वस्थ पैर भी मुर्दा और जड़ हो जाएंगे, पंगु हो जाएंगे और चलना बंद कर देंगे। लेकिन आत्मा के संबंध में हम सब अपनी आत्माओं को पंगु किए बैठे हैं। विवेक और विचार के संबंध में हम सब अपनी आंखें बंद किए बैठे हैं। और अगर इसका परिणाम यह हुआ हो कि हमारा विवेक नहीं जागता और हमारी आत्मा में स्फुरणा नहीं होती प्रकाश की, तो इसमें कौन कसूरवार है? कौन दोषी है? हम। हम इसलिए दोषी हैं कि हमने विश्वास कर लिया है कि कहीं और से ज्ञान उपलब्ध हो जाएगा।
ये कहीं और से ज्ञान उपलब्ध हो जाएगा, किसी और से--किसी तीर्थंकर से, किसी पैगंबर से, किसी ईश्वर के पुत्र से ज्ञान उपलब्ध हो जाएगा, किसी गुरु से ज्ञान उपलब्ध हो जाएगा। किसी और से ज्ञान उपलब्ध हो जाएगा यह धारणा जिसकी है उसे कभी ज्ञान उपलब्ध नहीं हो सकेगा। क्योंकि ज्ञान है उसके भीतर सोई हुई क्षमता। ज्ञान कोई संपत्ति नहीं है कि मैं कहीं जाऊं और खोज लाऊं। ज्ञान कोई बाहरी वस्तु नहीं है कि मैं जाऊं और खरीद लाऊं, किसी से मांग लूं या चुरा लूं। ज्ञान है मेरे प्राणों का सोया हुआ संगीत। ज्ञान है मेरे प्राणों की सोई हुई क्षमता। उसे मैं जगाऊं, तो वह जाग सकती है। लेकिन जब तक मैं बाहर से ज्ञान को इकट्ठा करने में विश्वास करूंगा, तब तक मैं ज्ञान के नाम पर सूचनाएं इकट्ठी कर लूंगा। नालेज के नाम पर इनफर्मेशंस इकट्ठी कर लूंगा। और उन सूचनाओं को समझ लूंगा कि यह ज्ञान हो गया। और जिसने सूचनाओं को ज्ञान समझ लिया उसके जीवन में ज्ञान के द्वार बंद हो जाते हैं। मैं अगर आपसे पूछूं, अभी चर्चा शुरू होने के पहले किसी मित्र ने कहा कि तो थोड़ी देर हम भगवान का नाम ही ले लें।
कितनी आश्चर्य की बात है, भगवान का नाम है जो आप ले लेंगे? और भगवान का नाम आपको पता कैसे चल गया? किसने आपको बता दिया भगवान का नाम? भगवान का कोई नाम है या कि सब नाम हमने भगवान के कल्पित कर लिए हैं। और हमें भगवान का नाम भी पता है और अपना नाम पता भी नहीं होगा। अगर हम किसी से पूछें कि तुम्हें अपना पता है, तो उसे अपने नाम का भी पता नहीं होगा कि वह क्या है, कहां से है, कौन है। लेकिन हमें कहेंगे कि हमें भगवान का नाम पता है। और भगवान का कोई नाम हो सकता है? लेकिन हम भगवान का नाम आधा घंटा ले सकते हैं और इस भ्रम में रह सकते हैं कि हमने भगवान का स्मरण किया।
हमें जिन्हें अपना भी पता नहीं है उन्हें भगवान के नाम का पता है! और
हम उसे ले लेंगे और दोहरा लेंगे आधा घंटा और एक तृप्ति की श्वास लेकर घर लौट जाएंगे कि हमने भगवान का नाम लिया! इससे बड़ी झूठ और कुछ भी नहीं हो सकती। इससे बड़ा असत्य और क्या हो सकता है। लेकिन हमें सीखनी है कुछ बातें, कुछ बातें हमें बता दी गई हैं कि यह भगवान का नाम है। और हमने इसे स्वीकार कर लिया है। और हम इस स्वीकृति को दोहराते हैं। और तब इसका एक ही परिणाम होता है वह यह कि भगवान को बिना जाने जानने का भ्रम पैदा हो जाता है। बिना जाने जानने का भ्रम पैदा हो जाता है। कहीं भी हमें कोई भीतर से संबंध भगवान से पैदा नहीं हो पाता, लेकिन कुछ शब्द, कुछ सिद्धांत, कुछ नाम, जो चारों तरफ हवा से हम सीख लेते हैं, उनसे हमें प्रतीत होता है हमने भगवान को जाना।
मैं आपसे निवेदन करूं, इस भांति की जो आस्तिकता है सीखी हुई, भगवान तक पहुंचने में इससे बड़ी और कोई बाधा नहीं है, और बड़ा कोई हिंडरेंस नहीं है। इसलिए ये तथाकथित आस्तिक शायद ही कभी भगवान को जान पाता हो। शायद ही। क्योंकि खोजने के पहले उसने मान लिया, जानने के पहले उसने जान लिया, पहचानने के पहले उसने पहचान बना ली, जो कि बिल्कुल झूठी होगी, जो कि बिल्कुल असत्य होगी। और इस पहचान पर उसकी खोज चलेगी, इस पहचान पर उसका सारा ज्ञान निर्मित होगा, सारा जीवन निर्मित होगा। वह सारा जीवन मिथ्या हो जाएगा, झूठा हो जाएगा। क्योंकि उसका प्रारंभ ज्ञान से नहीं हुआ, अज्ञान

को छिपाने से हुआ है। क्या यह उचित न होगा ईश्वर के खोजी को, परमात्मा की तलाश में गए हुए व्यक्ति को, या सत्य के अनुसंधान लगे हुए मनुष्य को, या जीवन के अर्थ को जो खोजने निकला है उसको, क्या सबसे पहले यह उचित न होगा कि वह यह जान ले कि वह कुछ भी नहीं जानता है? क्या यह प्राथमिक सीढ़ी न होगी कि वह अपने निपट और गहन अंधकार को और अज्ञान को स्वीकार कर ले?
यूनान में किसी ने खबर उड़ा दी थी कि साक्रेटीज ज्ञानी हो गया है। उसे ज्ञान उपलब्ध हो गया है। उसने परमात्मा को और सत्य को जान लिया। वह महाज्ञानी है। एक मित्र ने जाकर साक्रेटीज को कहा कि यह खबर फैलती है एथेंस में, गांव-गांव में यूनान के यह खबर पहुंच रही है कि तुम महाज्ञान को उपलब्ध हो गए हो।
साक्रेटीज ने कहा कि मित्रो, मालूम होता है कुछ भूल हो गई। जब मैं छोटा सा बच्चा था, तो मैं समझता था कि मुझे ज्ञान है। जब मैं जवान हुआ, तो मेरे ज्ञान की एक-एक ईंट खिसकने लगी। और जब मैं जितना-जितना सोचने लगा उतना-उतना मुझे पता चला कि मैं तो कुछ जानता नहीं हूं। और अब जब मैं बूढ़ा हो गया हूं, तो मैं यह बहुत सरलता से, स्पष्टता से कह सकता हूं कि मैं एकदम अज्ञान में हूं, मैं कुछ भी जानता नहीं हूं। तो जाओ और उनसे कह दो कि वह बात गलत है, साक्रेटीज तो कहता कि वह कुछ भी नहीं जानता है।
वे लोग गए, और जिन लोगों ने यह खबर उड़ा रखी थी कि साक्रेटीज महाज्ञानी
है उनसे उन्होंने जाकर कहा, कि साक्रेटीज तो कहता है कि मैं परम अज्ञानी हूं। तो उन लोगों ने कहाः इसीलिए, इसीलिए तो हम कहते हैं कि उसे ज्ञान उपलब्ध हो गया है। क्योंकि ज्ञान को उपलब्ध करने की पहली शर्त यही है कि हम अपने अज्ञान को परिपूर्णतया में स्वीकार कर लें और जान लें; उसे छिपाएं न, उसे ढांके न, उसे वस्त्रों से ओढ़ कर आंखों से ओझल न करें। यह जो हमारी आस्तिकता है, हमारा ज्ञान है, हमारी जानकारी है, यह सबकी सब हमारे अज्ञान को मिटाने में समर्थ नहीं है, सिर्फ ढांकने में समर्थ है। और ढंका हुआ अज्ञान खतरनाक है। और उस ढंके हुए अज्ञान को, और उस अज्ञान से निकली हुई व्याख्याएं और भी खतरनाक हो जाती हैं।
रामकृष्ण कहते थे, एक आदमी बचपन का अंधा था, वह अपने एक मित्र के घर मेहमान हुआ। मित्र ने बहुत-बहुत मिठाइयां बनाईं उसके स्वागत में। उसने किन्हीं मिठाइयों के संबंध में पूछा कि ये कैसे बनी हैं? मुझे बहुत अच्छी लगीं, उस अंधे ने पूछा। तो मित्र ने कहा कि ये दूध से बनी हैं। उस अंधे ने पूछा कि क्या मैं जानना चाहूं तो जान सकता हूं कि दूध कैसा होता है? क्या मुझे समझाओगे? क्या मुझे थोड़ा ज्ञान दोगे इस संबंध कि दूध कैसा होता है? अंधे का पूछना तो उचित था, स्वाभाविक था। उसके मन में ख्याल उठा होगा
कि जानूं कि दूध कैसा है? यह जिज्ञासा सबके भीतर है कि हम जानें। जानने कि जिज्ञासा सबके भीतर है, उसके भीतर भी थी। उसका प्रश्न तो उचित था, लेकिन मित्र नासमझ रहा होगा। मित्र समझाने बैठ गए, परिवार के लोग कि दूध कैसा है। तो उस मित्र ने कहा कि दूध--बगुला देखा है, बगुले के जैसा सफेद, शुभ्र, जैसे बगुले के पंख होते हैं ऐसा सफेद दूध होता है।
उस मित्र ने कहा कि दूध की बात तो वहीं रही, अब पहले मुझे यह बताओ यह बगुला क्या है और कैसा होता है? क्योंकि मैंने तो कभी बगुला देखा नहीं है, मैं तो कभी जानता नहीं यह शुभ्र क्या है, सफेद क्या है। मेरा पहला प्रश्न तो अपनी जगह रहा, अब मुझे इस दूसरे प्रश्न का पहले उत्तर दो।
मित्र नासमझ रहे होंगे, अब भी उनको ख्याल नहीं आया कि वे क्या कर रहे हैं। मित्र की पत्नी ने अपना हाथ ऊपर उठाया और उस अंधे आदमी को कहाः मेरे हाथ पर हाथ फेरो, जैसा मेरा हाथ लंबा है ऐसे ही बगुले की गर्दन होती है। जैसा मेरा हाथ झुका है ऐसा ही उसका सिर झुका होता है। उस अंधे आदमी ने उसकी पत्नी के हाथ पर हाथ फेरा और फेर कर वह खुशी से भर गया और उसने कहा कि मैं समझ गया दूध कैसा होता है। मैं समझ गया, मुड़े हुए हाथ की भांति दूध होता है, मैं समझ गया।
तब वे मित्र बहुत परेशान हुए। इससे से तो बेहतर था कि यह अंधा आदमी जानता कि मैं नहीं जानता हूं कि दूध कैसा होता है। यह इसका जानना तो बहुत खतरनाक हो गया। उसने कहा कि मुड़े हुए हाथ की भांति दूध होता है, मैं समझ

गया, मैं बिल्कुल समझ गया। वे उसे रोकने लगे कि तुम ठहरो समझने में, थोड़ा रुको, इतनी जल्दी मत करो। पर उसने कहा कि नहीं, मैं समझ गया, अब और क्या है समझने में। दूध बगुले की भांति होता है, बगुला मुड़े हुए हाथ की भांति होता है। मतलब, गणित सीधा है, दूध मुड़े हुए हाथ की भांति होता है।
यह जिस अंधे आदमी को जो दूध का ज्ञान हुआ, परमात्मा का सारा हमारा ज्ञान ऐसा ही है मुड़े हुए हाथ की भांति। हम परमात्मा को नहीं जानते। अंधा आदमी दूध को नहीं जानता। मित्र समझाते हैं कि दूध कैसा होता है। पंडित हमें समझाते हैं कि परमात्मा कैसा होता है। न तो मित्र अंधे आदमी से कहता है कि मैं न समझाऊंगा, समझाना व्यर्थ है, समझाया नहीं जा सकता, आंख हो तो समझा जा सकता है, अन्यथा नहीं समझाया जा सकता। मित्र यह नहीं कहता है, पंडित भी यह नहीं कहता है कि आंख हो तो समझा जा सकता है।
मित्र भी समझाता है, पंडित भी समझाता है। और हम समझ लेते हैं। और तब हमारी समझ इस तरह की होती है--हिंदू एक तरह का भगवान बनाता है, मुसलमान दूसरी तरह का भगवान बनाता है, क्रिश्चियन तीसरी तरह का भगवान बनाता है। दुनिया में न मालूम कितने तरह के भगवान पैदा हो जाते हैं। क्योंकि हरेक अंधा आदमी अपने अंधेपन में कोई कल्पना करता है और उस कल्पना को समझ लेता है कि भगवान है। फिर इन कल्पनाओं पर झगड़े होते हैं, फिर इन कल्पनाओं पर हत्याएं होती हैं।
तीन हजार साल से धार्मिक आदमी एक-दूसरे की हत्या कर रहे हैं। एक-दूसरे
का मंदिर तोड़ रहे हैं, किताबें जला रहे हैं, आग लगा रहे हैं। बड़ा पागलपन है। नास्तिकों ने इतना कुछ बुरा नहीं किया दुनिया में आज तक। नास्तिकों के ऊपर कोई बहुत बड़े अपराध नहीं हैं। न तो मकान में आग लगाने के, न लोगों की हत्या करने के, न स्त्रियों पर बलात्कार करने के, न मंदिर-मूर्तियां तोड़ने के, न मस्जिदें जलाने के। नास्तिकों के ऊपर कोई अपराध नहीं है सारी दुनिया में। यह बड़ी हैरानी की बात है, आस्तिकों पर अपराध और नास्तिकों पर अपराध नहीं है। जरूर कुछ गड़बड़ हो गई है। जरूर कुछ गड़बड़ हो गई है। यह आस्तिक के साथ कुछ गड़बड़ है। और वह गड़बड़ यह है कि इसकी आस्तिकता झूठी है, बंद आंखों की आस्तिकता है। इसने कुछ धारणाएं बना ली हैं। और उन धारणाओं के इर्दगिर्द जीता है। दूसरों ने दूसरी बना ली हैं। और अंधों की धारणाएं आपस में लड़ती हैं और कठिनाई खड़ी हो गई है। अन्यथा आंख खुली आस्तिकता का एक ही धर्म हो सकता है, दस धर्म नहीं हो सकते। और आंख खुले मनुष्य का एक ही परमात्मा हो सकता है, दस परमात्मा नहीं हो सकते।
लेकिन हमारा यह जो, हमारी जो यह स्थिति है, हमारे ये जो मंदिर और मस्जिद हैं, हमारा यह जो सारा का सारा दुनिया में आस्तिकों का उपद्रव है, यह कैसे खड़ा हो गया है? यह खड़ा हो गया इस बात से कि यह ज्ञान, यह परमात्मा का बोध हमारे प्राणों से नहीं उपजा है, यह हमने सूचनाओं की तरह स्वीकार कर लिया है। और तब, तब धर्म के अड्डे ही अधर्म के अड्डे हो जाएं तो आश्चर्य नहीं है। और तब सारी दुनिया में धर्म के प्रति विरोध पैदा हो और धर्म के प्रति अपमान पैदा हो, अनादर पैदा हो, अनास्था पैदा हो, तो भी कोई आश्चर्य नहीं है। और अगर दुनिया का युवक मंदिरों में जाना बंद कर दे और चर्चों में जाना बंद कर दे, और आदर देना बंद कर दे, और धर्म का सारी दुनिया में अपमान शुरू हो जाए, तो भी आश्चर्यजनक नहीं है।
इसका जिम्मा किस पर है? इसका जिम्मा उन्हीं लोगों पर है जिन्होंने बंद आंखों से धर्म निर्मित किया है। और ऐसा धर्म डूबेगा और जाएगा, इसके पहले कि ऐसा धर्म डूबे और चला जाए, क्या आंख वाला धर्म पैदा नहीं हो सकता है? क्या हम आंख खोल कर सत्य की खोज और जिज्ञासा में संलग्न नहीं हो सकते हैं? मुझे दिखाई पड़ता है कि हो सकते हैं। होना पड़ेगा। होना जरूरी है। होना अनिवार्य है। क्यों? क्योंकि जो बंद आंख से जीवन को टटोलता है और जो धारणाएं बनाता है, वे खतरनाक हैं, अधूरी हैं, घातक हैं, अज्ञान से भी ज्यादा घातक हैं। तो अज्ञान कैसे टूटे? एक रास्ता हम जानते हैं, अज्ञान कैसे ढंके। और इसलिए एक आदमी बहुत से शास्त्र पढ़ ले और शास्त्रों की बातें करने लगे, तो अज्ञान ढंका हुआ मालूम पड़ने लगता है। सस्ता है यह रास्ता

अज्ञान को ढांक लेने का। लेकिन ढंका हुआ अज्ञान नष्ट नहीं होता है। वह और गहरे हमारे प्राणों में प्रविष्ट हो जाता है।
इसलिए पंडित से ज्यादा अज्ञानी आदमी खोजना कठिन है। वह बहुत कुछ जानता हुआ मालूम पड़ता है और बिल्कुल भी नहीं जानता। शब्द हैं उसके पास, सिद्धांत हैं उसके पास। विवाद कर सकता है, विरोध कर सकता है, शास्त्रार्थ कर सकता है, हरा सकता है, जीता सकता है। लेकिन जहां तक जानने का संबंध है, उससे उसका दूर का भी संबंध नहीं।
एक साधु के आश्रम में एक संध्या एक घूमता हुआ संन्यासी पहुंचा। वह संन्यासी खोज रहा था किसी गुरु को। उस आश्रम के बूढ़े गुरु के पास, सोचा, कुछ दिन रुकूं। कोई पंद्रह दिन वहां रुका। लेकिन पंद्रह दिन में उसे ऐसा लगा कि वह बूढ़ा गुरु कुछ बहुत जानता नहीं है। कुछ थोड़ी सी बातें रोज-रोज दोहराता है। ऊब पैदा हो गई। इतनी सी थोड़ी सी बातें थीं, उन्हीं-उन्हीं को रोज-रोज सुनने का क्या प्रयोजन था, एक दिन उसने सोचा कि और कहीं खोजूं, और कहीं जाऊं।
जिस रात आश्रम छोड़ने को था उसी रात एक और युवक संन्यासी उस आश्रम में पहुंचा। उस रात उस आश्रम के अंतेवासी इकट्ठे हुए। और वह जो नया संन्यासी उसी संध्या पहुंचा था, उसने कुछ ऐसी वेदांत की बारीक और सूक्ष्म चर्चा की कि वे सभी आश्रम के अंतेवासी बहुत-बहुत प्रभावित हुए। वह युवक जो उस दिन आश्रम छोड़ने को था, उसने भी सोचा कि गुरु हो तो ऐसा हो। कितनी बारीक, कितनी सूक्ष्म, एक-एक शब्द की कितनी गहराइयां उस व्यक्ति ने प्रकट की थीं। उस युवक के मन में लगा कि आज इस बूढ़े गुरु के मन में कितनी ईर्ष्या न जलती होगी, कितना मन ही मन में जलन नहीं होती होगी। यह तो कुछ भी नहीं जानता है, और यह युवा संन्यासी जो आज आया है कितना जानता है। बात पूरी हुई, कोई दो घंटे तक चर्चा चली, उस आगुंतक संन्यासी ने जिसने यह सारी चर्चा की थी, दो घंटे के बाद सिर उठा कर देखा कि लोगों पर क्या प्रभाव पड़ा। उसने उस बूढ़े से पूछा कि आपको कैसा लगा मैंने जो कहा?
उसे बूढ़े ने जो कहा वह बहुत समझने जैसा है। उसने कहा कि मेरे मित्र, मैं दो घंटे से श्वास साधे हुए तुम्हें सुनता हूं कि तुम कुछ बोलो, लेकिन तुम तो कुछ बोलते ही नहीं।
उस संन्यासी ने कहाः आप क्या कहते हैं, मैं कुछ बोलता नहीं तो कौन बोलता था दो घंटे तक? आप पागल तो नहीं हैं?
उस बूढ़े ने कहाः मैंने बहुत समझने की कोशिश की, तुम्हारे भीतर से उपनिषद बोलते हैं, गीता बोलती है, लेकिन तुम नहीं बोलते। इसलिए मैं कहता हूं कि दो घंटे मैंने सुना तुम तो बोलते नहीं। शास्त्र बोलते हैं, सिद्धांत बोलते हैं, शब्द बोलते हैं तुम नहीं बोलते। यह दो घंटे में तुमने जो भी कहा इसमें से क्या तुम्हारा है? उसे मैं समझूंगा कि तुमने बोला। तुम मुझे दोहरा दो कि क्या तुम्हारा है? और अगर इसमें से कुछ भी तुम्हारा नहीं है, तो मैं कैसे मानूं कि तुम बोले? तुम तो चुप रहे, कोई और तुम्हारे भीतर से बोलता चला गया।
यही मैं आपसे पूछता हूं, यही मैं सबसे पूछता हूं कि क्या आपका है? परमात्मा को आप जानते हैं? जो सुबह रोज बैठ कर उसका नाम ले लेते हैं। आत्मा को आप जानते हैं? जो आप दोहराते हैं कि भीतर आत्मा है जो अमर है। आप जानते हैं कि मृत्यु के बाद आप बचेंगे? आप जानते हैं कि जन्म के पहले आप थे? क्या आप जानते हैं? वह जो सामने एक पत्थर पड़ा है आपके घर के, उसको जानते हैं? वह जो पौधा निकला है आपकी बगिया में, उसको जानते हैं? वे जो आकाश में बादल भटकते हैं, उनको जानते हैं? क्या जानते हैं? आप क्या जानते हैं? बहुत कुछ जानते होंगे आप, लेकिन वह जानना आपका जानना नहीं होगा। आपने कहीं से सीखा होगा, सुना होगा, कहीं से पढ़ा होगा। जो भी कहीं से सीखा है, सुना है, पढ़ा है, वह आपका जानना नहीं है। और जो आपका जानना नहीं है वह आपकी मुक्ति नहीं बन सकता। जो आपका ज्ञान नहीं है वह आपका प्रकाश नहीं बन सकता, वह आपकी आंख नहीं बन सकता।
तो सबसे पहली बात तो इस बात को खोजने की है कि क्या मैं जानता हूं? मैं, मैं क्या जानता हूं? तो बहुत घबड़ाहट होगी, पता चलेगा मैं तो कुछ भी

नहीं जानता। कोई और जानता है, उसकी बातें मैं दोहराता हूं। क्या आप सोचते हैं ज्ञान उधार लिया जा सकता है? क्या आप सोचते हैं ज्ञान हस्तांतरित हो सकता है? एक हाथ से दूसरे हाथ में जा सकता है?
नहीं, ज्ञान तो एक हाथ से दूसरे हाथ में कभी नहीं जा सकता। ज्ञान कभी दोहराया नहीं जा सकता। किसी दूसरे को दिया नहीं जा सकता। तो फिर हम यह जो जानते हैं यह क्या है? यह ज्ञान है? एक विचार भी आपका है? एक अनुभूति, एक अंतर्दृष्टि आपकी है जो आप निपट सहज मन से जान सकें कि यह मैंने, यह मैंने जाना? क्या ऐसा कोई जीवंत अनुभव है? अगर नहीं है, तो फिर यह ज्ञान जितना हम जानते हैं यह क्या है?
यह अज्ञान से भी ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि यह ज्ञान नहीं है और ज्ञान होने का भ्रम पैदा कर देता है। यह इल्युजरी है, यह मिथ्या है, यह झूठा है। यह ज्ञान नहीं है और ज्ञान होने का भ्रम पैदा कर देता है। और हम क्यों इसे स्वीकार कर लेते हैं? आलस्य के कारण स्वीकार कर लेते हैं। खुद ज्ञान खोजना हो तो श्रम करना पड़ेगा। शक्ति और साहस चाहिए, खोज की हिम्मत चाहिए, अनजान, अपरिचित रास्तों पर चलने की हिम्मत चाहिए। अपरिचित सागर में नौका खोलने में जितनी हिम्मत चाहिए उससे कहीं बहुत ज्यादा सत्य के अपरिचित सागर में यात्रा करने की हिम्मत चाहिए। लेकिन इस सबसे सस्ते में निबटारा हो जाता है। हम किताबें उठा लेते हैं और कुछ बातें सीख लेते हैं। और सीख कर उन बातों को तोतों की भांति दोहराने लगते हैं। और उन दोहराई बातों से ज्ञानी होने का मजा मिलना शुरू हो जाता है। और दो-चार लोग भी हमारे आस-पास इकट्ठे हो सकते हैं जो हमको गुरु कहने लगें कि ये बहुत जानते हैं, इन्हें गीता पूरी कंठस्थ है, उपनिषद पूरे आते हैं। तो न केवल हम ज्ञानी बन जाते हैं, गुरु बन जाते हैं, दो-चार और शिष्य भी इकट्ठे आस-पास हो जाते हैं। और एक अजीब, एक नासमझी का अजीब क्रम दुनिया में चलना शुरू होता है। और यह चल रहा है हजारों वर्ष से। बहुत थोड़े से लोगों को ज्ञान उपलब्ध हुआ है। और उसका कारण यह नहीं है कि ज्ञान उपलब्ध होना कोई बहुत दुरूह और कठिन बात है, उसका कारण केवल इतना है कि हम सब्स्टीट्यूट नालेज से तृप्त हो जाते हैं, पूरक ज्ञान से तृप्त हो जाते हैं।
कोई आदमी पानी की खोज में जाए और रास्ते में नकली पानी मिल जाए, कोई आदमी फूल की खोज में जाए और रास्ते में कागज के फूल मिल जाएं और खरीद कर घर आ जाए, ऐसे हमने कागजी ज्ञान को इकट्ठा कर लिया है, फूल सजा लिए हैं, और इन फूलों से तृप्त होकर बैठ गए हैं इसलिए ज्ञान उत्पन्न नहीं होता।
अज्ञान बाधा नहीं है ज्ञान के आने में, स्मरण रखिए, उधार ज्ञान बाधा है। क्योंकि जो उधार ज्ञान को पकड़ लेता है उसकी ज्ञान की खोज बंद हो जाती है। फिर उसे छोड़ने में भी डर लगता है। छोड़ने में इसलिए डर लगता है कि उधार ज्ञान हमारे अहंकार की तृप्ति करने लगता है, लगने लगता है कि मैं कुछ हूं, क्योंकि मैं जानता हूं। मैं ईश्वर को जानता हूं, मैं आत्मा को जानता हूं, मैं कुछ हूं, मैं ज्ञानी हूं, यह अहंकार की तृप्ति होने लगती है। फिर अगर कोई कहे कि यह झूठा है, तो प्राण बड़े संकट में पड़ते हैं कि इसे कैसे छोड़ दूं। इसे छोड़ दूंगा तो फिर निपट अज्ञानी रह जाऊंगा। जो कि हैं। जो कि असलियत में मैं हूं। लेकिन छोड़ने में डर लगता है, भय लगता है। और फिर यह भय बाधा बन जाती है। और तब हमारी खोज हमेशा के लिए बंद हो जाती है।
ज्ञान का किनारा छोड़ना पड़ता है। दूसरों के ज्ञान का किनारा छोड़ना पड़ता है, जिसे अपने ज्ञान की खोज में जाना हो।
एक छोटी सी कहानी कहूं।
एक रात कुछ मित्र एक मधुशाला में गए और उन्होंने शराब पी ली। पूर्णिमा की रात थी। फिर वे बाहर निकले। उन्होंने आकाश की तरफ देखा, नशे में भरे हुए थे, रात तो वैसे ही बहुत सुंदर थी, नशे में और भी सुंदर दिखाई पड़ने लगी। और उन सबने सोचा कि चलो नदी के किनारे चलें और नौका पर यात्रा करें। वे नदी कि किनारे गए। उन्होंने एक नौका पर सवारी की, पतवारें उठाईं और यात्रा शुरू कर दी। कोई आधी रात होगी। फिर सुबह की ठंडी हवाएं चलने लगीं तब उनका होश थोड़ा वापस लौटा। ठंडी हवाओं के झोंकों ने नशा कुछ कम किया। तो उनमें से एक ने कहा कि मित्रो, न मालूम हम कितनी दूर निकल आए

होंगे, अब सुबह होने के करीब है, वापस लौट चलें। किस दिशा में चले आए हैं यह भी पता नहीं। कितनी दूर निकल आए हैं यह भी पता नहीं। एक आदमी नीचे उतर कर देखे कि हम कहां हैं? एक व्यक्ति नीचे उतरा और उसने कहा कि तुम बिल्कुल मत घबड़ाओ हम वहीं हैं जहां हम रात थे। वह नौका वहीं खड़ी थी। वे जंजीर खोलना भूल गए थे, वह किनारे से बंधी थी।
रात भर उन्होंने पतवार चलाई, रात भर। और यह सोचते रहे कि कहीं पहुंच
गए होंगे दूर। लेकिन सुबह उन्होंने वहीं पाया जहां वे थे। एक बुनियादी बात भूल गए। नाव पर बैठे यह भी ठीक था, पतवार उठाई यह भी ठीक था, पतवार चलाई यह भी ठीक था, लेकिन सबसे पहले जरूरी था कि नौका कहीं बंधी तो नहीं है? अगर नौका बंधी है तो सब व्यर्थ हो जाएगा।
मृत्यु के करीब पहुंच कर आदमी पाता है, जब मृत्यु की ठंडी हवाएं लगनी शुरू होती हैं और नशा थोड़ा उखड़ता है तब पता चलता है उतर कर तो देख लें कि कहीं पहुंचे या नहीं, और अधिक लोग वहीं पाते हैं जहां जन्म के साथ उन्होंने पाया था, नौका वहीं खड़ी रह जाती है। क्योंकि जंजीर खोलना हमारे कभी ख्याल में नहीं रहा कि जंजीर भी खोलनी जरूरी थी।
जंजीर कहां बंधी है चित्त की कि वह परमात्मा तक नहीं पहुंच पाता? यह
जो झूठा ज्ञान है इसके किनारे से जंजीर बंधी है। झूठे ज्ञान के किनारे से जंजीर बंधी है। इसलिए कभी सम्यक ज्ञान की तरफ गति नहीं हो पाती।
अज्ञान से जंजीर नहीं बंधी है, स्मरण रखिए। क्योंकि अज्ञान से कोई भी बंधा रहने को राजी ही नहीं होता है। लेकिन झूठे ज्ञान से बंधने में एक रस है, एक मजा है, इसलिए उससे कोई बंधने को राजी हो जाता है। रस ही तो बंधन है। अज्ञान से कोई नहीं बंधता है। इसलिए अगर कोई आपको अज्ञानी कह दे तो आप गुस्से में आ जाते हैं, क्योंकि अज्ञानी होने को कोई राजी नहीं है। अगर आपको कोई पकड़ ले रास्ते में कह दे आप बड़े अज्ञानी हो, तो आप मुकदमा चलवाते हैं कि इसने मेरा अपमान कर दिया। अज्ञानी होने को कोई राजी नहीं है। टाल्सटाय ने लिखा है कि एक आदमी एक सुबह एक चर्च में जाकर भगवान के सामने प्रार्थना कर रहा था। अंधेरा था, कोई पांच बजे होंगे। कोई नहीं था चर्च में, टाल्सटाय भी घूमता हुआ सुबह-सुबह चर्च में पहुंच कर एक कोने में खड़ा हुआ था। वह आदमी प्रार्थना कर रहा था, हे भगवान, मैं बहुत बड़ा अज्ञानी हूं, बहुत बड़ा पापी हूं। टाल्सटाय ने देखा कि यह कौन आदमी है? चर्च के बाहर वह आदमी बाहर निकला तो टाल्सटाय उसके पीछे हो लिया। जब थोड़ा प्रकाश हुआ तो देखा वह तो नगर का सबसे बड़ा धनी-मानी व्यक्ति था। जब वे चौरस्ते पर पहुंचे तो टाल्सटाय चिल्लाया और कहा कि ठहरो, हे अज्ञानी! हे पापी! रुको! उस आदमी ने कहा कि देख, जो मैंने चर्च में कहा था वह सब जगह कहने को नहीं है। और मुझे पता नहीं था कि तू वहां मौजूद है। मैंने सिर्फ भगवान से कहा था। अगर इस बात को तूने चौरस्ते पर कहा, तो सांझ होने के पहले हथकड़ियों में अपने को बंद पाएगा। तो टाल्सटाय ने कहा कि मैं तो सोचता था कि तुम जब भगवान से कह रहे हो कि मैं अज्ञानी हूं। उसने कहा कि वह ठीक है भगवान से कहना। वह हमारी और भगवान के बीच की बातचीत है। यह किसी और के बीच का मामला नहीं है। मैं चौरस्ते पर अज्ञानी अपने को कहने को राजी नहीं हूं।
आप भी चौरस्ते पर अपने को अज्ञानी कहने को राजी नहीं हैं। अज्ञानी तो कोई रहने को राजी नहीं हैं। तो अगर आपको पता चल जाए कि आप अज्ञानी हो, तो तब आप उस किनारे को छोड़ दोगे। लेकिन अगर आपको पता चलता हो कि आप ज्ञानी हो तो फिर किनारे को छोड़ना बहुत कठिन है। क्योंकि ज्ञानी होने का रस तो कोई भी लेना चाहता है। कोई भी। अज्ञानी से अज्ञानी व्यक्ति से कहो कि तुम ज्ञानी हो, तो वह भी रीढ़ सीधी करके बैठ जाएगा। अगर उसके पीछे-पीछे आप घूमने लगो तो वह भी कहने लगेगा कि मेरी भी कुंडलिनी शक्ति जाग गई है और मेरे भीतर भी ऐसे-ऐसे अनुभव होने शुरू हो गए हैं। ज्ञानी होने का सुख अहंकार को तृप्त करने का सुख है।
तो अज्ञान के तट से किसी की नाव नहीं बंधी है कभी। लेकिन ज्ञान के तट
से सबकी नावें बंधी हुई हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि ज्ञान को छोड़ें, तो यात्रा हो सकती है ज्ञान की तरफ। उस ज्ञान को छोड़ना पड़ेगा जो दूसरों से पाया है। उस ज्ञान को पाने के लिए जो कि किसी से नहीं पाया जाता और भीतर

पैदा होता है और जागता है, वही है ज्ञान, वही है ज्योति, वही है प्रकाश। और उसी प्रकाश में जाना जाता है वह निगूढ़तम सत्य जिसको हम परमात्मा कहते हैं। उसी प्रकाश में जानी जाती है वह शक्ति जिसे हम आत्मा कहते हैं। उसी प्रकाश में पहचाना जाता है वह जो अमृत है, और अनादि और अनंत है। और जो हमेशा से था और हमेशा होगा। अभी नहीं, अभी तो हम जो अमृत वगैरह की बातें करते हैं वे एकदम झूठी हैं। अभी तो हम जो कहते हैं कि आत्मा अमर है, वह इसलिए नहीं कि हम जानते हैं आत्मा अमर है बल्कि इसलिए कि हम सबको मरने से डर लगता है। हम सब मरने से डरते हैं इसलिए सब कहने लगते हैं आत्मा अमर है। और जैसे-जैसे आदमी बूढ़ा होने लगता है और जोर-जोर से कहने लगता है कि आत्मा अमर है।
यह हमारा मरने का भ्रम है, मरने का भय, यह कोई आत्मा की अमरता का अनुभव नहीं है। इसलिए जो कौम जितनी ज्यादा कायर होती है और मरने से जितनी ज्यादा डरती है उतनी आत्मा की अमरता में विश्वास भी करती है। ये दोनों बातें एक ही साथ पाई जाती हैं एक ही कौम में। आत्मा की अमरता का विश्वास करने वाली कौम धार्मिक है ऐसा मत समझ लेना। और आत्मा की अमरता को मानने वाला आदमी धार्मिक है ऐसा भी मत समझ लेना। ये सिर्फ मृत्यु से भयभीत, मरने से डरे हुए लोग। मौत डर देती है। ऐसे तो हम रोज देखते हैं कि शरीर तो मर जाता है। इसलिए फिर ऐसे गुरुओं की तलाश करते हैं जो यह विश्वास दिला दे कि शरीर भला मर जाए, लेकिन आत्मा कभी नहीं मरती। हम मरना नहीं चाहते हैं। नहीं मरना चाहते इसलिए न मरने की बात में विश्वास कर लेते हैं। यह कोई धार्मिकता नहीं है। यह कोई ज्ञान नहीं है। इससे ज्यादा पाखंड, इससे ज्यादा झूठ और कुछ नहीं हो सकता। लेकिन, लेकिन इन बातों को, इन बातों को सीख लेने को, इन बातों को दोहरा देने को हम समझते हैं कि एक आदमी में धार्मिकता का जन्म हो गया है।
नहीं, यह धार्मिकता का जन्म नहीं है। भय से आत्मा की अमरता को मान लेना धार्मिकता नहीं है। भय से परमात्मा को मान लेना धार्मिकता नहीं है। परंपरा के प्रचार से ईश्वर को स्वीकार कर लेना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है।
हजारों साल से कोई बात दोहराई जाती है इसलिए मान लेना कोई विवेक नहीं है।
वरन खुद खोजने के लिए तत्पर होना, खुद खोजने की आकांक्षा करना बिना किसी भय के, बिना किसी प्रचार के, बिना किसी प्रलोभन के जीवन क्या है इस जिज्ञासा की खोज में गतिमान होना धार्मिक आदमी का लक्षण है।
विश्वास धार्मिक आदमी का लक्षण नहीं है। अधार्मिक आदमी का लक्षण है।
जो विश्वास कर लेता है वह अधार्मिक आदमी है। क्यों? वह इसलिए अधार्मिक आदमी है कि उसने सत्य को इस योग्य भी नहीं पाया कि उसके लिए श्रम करता। उसने सत्य को इस योग्य भी नहीं माना कि उसके लिए खोज करता। उसने सत्य को एक फिजूल चीज मानी जिसको किसी ने भी कह दिया और उसने मान लिया। वह दो पैसे की हंडी बाजार में खरीदने जाता है तो ठोक-बजा कर लेता है, लेकिन सत्य को उसने दो पैसे की हंडी से भी कम मूल्य का समझा। बिना ठोके-बजाए स्वीकार कर लिया। मेरे पिता कहते हैं इसलिए मान लिया। पिता के पिता कहते हैं इसलिए मान लिया। राम कहते हैं, कृष्ण कहते हैं इसलिए मान लिया। अभी राम भी आकर कहें कि यह हंडी बिल्कुल मजबूत है, खरीद लो, मत ठोको, तो भी वह शक करता है, हंडी ठोक कर लेगा। जरा राम इधर को बचेंगे कि वह हंडी को बजा कर देख लेगा कि है भी ठीक कि नहीं। दो पैसे का मूल्य भी उसके लिए ज्यादा है। सत्य का मूल्य उसे ज्यादा नहीं है।
असल में जिन चीजों का हमारे मन में कोई मूल्य नहीं होता उनको हम दूसरों से स्वीकार कर लेते हैं। और जिन चीजों का मूल्य होता है उनको हम खुद खोजते हैं, अपने प्राणों को लगाते हैं और उसी वक्त स्वीकार करते हैं जब हम जानते हैं।
सत्य का हमारे दृष्टि में मूल्य नहीं है इसलिए हम विश्वासी बने हुए हैं। सत्य का हमारी दृष्टि में मूल्य होगा, तो हम विश्वासी नहीं हो सकते, हम खोजी बनेंगे। हमारी प्यास होगी, हम जानना चाहेंगे। और इस प्यास के लिए चाहिए स्वतंत्र चित्त, इस प्यास के लिए चाहिए ऐसा चित्त जो दूसरों के ज्ञान के तट से अपनी जंजीर खोल ले। जो इतना साहस करता है वही केवल

परमात्मा के रास्ते पर जा सकता है। जो साहस ही नहीं करता वह तो परमात्मा के रास्ते पर क्या जाएगा। भेड़ बनने से कोई परमात्मा के रास्ते पर नहीं जाता। एक भेड़ जा रही है उसके पीछे आप भी जा रहे हैं। ऐसा अंधानुगमन परमात्मा तक नहीं ले जाता।
एक स्कूल के अध्यापक ने मुझे बताया, उसने एक बच्चे को पूछा, एक गांव, देहात में, स्कूल में कि ग्यारह भेड़ें एक खेत के भीतर बंद हैं, अगर पांच भेड़ें छलांग लगा कर बाहर निकल जाएं तो भीतर कितनी भेड़ बचेंगी?
एक छोटे बच्चे ने हाथ हिलाया और उसने कहा कि बिल्कुल भी नहीं।
उस अध्यापक ने कहाः तुम बिल्कुल पागल हो! ग्यारह भेड़ें बंद हैं; पांच छलांग लगा कर निकल गईं तो भीतर कितनी बचेंगी?
उस बच्चे ने कहाः बिल्कुल भी नहीं। मैं भेड़ों को जानता हूं। आप गणित
को जानते होंगे। मेरे घर में भेड़ें हैं। उस बच्चे ने कहा, मेरे घर में भेड़ें हैं। आप गणित को जानते होंगे, गणित हो सकता है मुझे पता भी न हो, लेकिन भेड़ें मुझे पता हैं। पांच क्या एक भेड़ भी निकल जाए तो फिर पीछे बिल्कुल भी नहीं बचेंगी, वे सब उसके पीछे चली जाएंगी।
आदमी हजारों साल से भेड़ों जैसा व्यवहार कर रहा है और हम कहते हैं यह धार्मिक आदमी है। एक भेड़ जाती है उसके पीछे दूसरी भेड़ जाती है, उसके पीछे तीसरी भेड़ जाती है। और यह हजारों साल से चल रहा है और हम कहते हैं यह धार्मिक आदमी है। मैं तो कहता हूं यह आदमी ही नहीं है। धार्मिक आदमी होना तो बड़ी दूर की बात है। रिलीजस माइंड, धार्मिक आदमी जैसी सुंदर तो कोई चीज होती नहीं। धार्मिक आदमी जैसी महत्वपूर्ण तो कोई बात होती नहीं। धार्मिक आदमी तो जीवन का फूल है। ये धार्मिक आदमी नहीं हैं जो भेड़ों की भांति व्यवहार कर रहे हैं। धार्मिक आदमी का तो पहला तत्व है कि वह स्वतंत्र होगा। वह खुद खोजेगा, वह अंधानुकरण नहीं करेगा, वह किसी के पीछे फॉलो नहीं करेगा, वह किसी का अनुयायी नहीं होगा। अपने और परमात्मा के बीच वह किसी को लेने को राजी नहीं होगा, वह कोई मध्यस्थ स्वीकार नहीं करेगा। वह तो अपने पूरे प्राणों को लेकर, अपने पूरे विवेक को जगा कर, अपनी पूरी विचार की शक्ति को उठा कर, अपनी सारी शक्तियों को एकजुट इकट्ठा करके खोज में संलग्न होगा। और जिस दिन जान लेगा उसी दिन कहेगा कि मैंने जाना। और जब तक नहीं जानेगा, वह विनम्रता से कहेगा कि मैं नहीं जानता हूं, मुझे अभी कुछ भी पता नहीं है। यह तो धार्मिक आदमी का पहला लक्षण होगा।
स्वतंत्रता, चित्त सब भांति पराए विचारों, पराए ज्ञान से स्वतंत्र होना चाहिए। जो स्वतंत्र नहीं है वह सत्य को कभी नहीं पा सकेगा। सत्य की पहली शर्त स्वतंत्रता है। तो चित्त स्वतंत्र होना चाहिए।
यह आज सुबह में पहली भूमिका आपसे कहा हूंः स्वतंत्रता--विचार की, विवेक की, आत्मा की, सब भांति स्वतंत्रता। उसे कहीं बांधे न, उसे कहीं झूठे ज्ञान से अटकाए न। कल सुबह दूसरे सूत्र की आपसे बात करूंगाः सरलता। और परसों सुबह तीसरे सूत्र की बात करूंगाः शून्यता।
स्वतंत्रता, सरलता और शून्यता, इन तीन सीढ़ियों पर जो खड़े होने को राजी
हो जाता है उसे सत्य को खोजने कहीं जाना नहीं पड़ता, सत्य उसे खोजते हुए उसके द्वार पर आ जाता है। जो इन तीन भूमिकाओं को पूरा करता है उसे परमात्मा को खोजने कहीं जाना नहीं पड़ता, वह पाता है कि परमात्मा उसके द्वार पर ही आ गया है। दो सीढ़ियों की कल और परसों मैं चर्चा करूंगा और संध्या, सुबह मैं जो बोलूंगा इस संबंध में आपके जो प्रश्न होंगे वे लिखित पहुंचा देंगे, तो सांझ को आपके प्रश्नों के उत्तर दूंगा। जैसे आज स्वतंत्रता पर बोला हूं, इस संबंध में जो भी हो, वह सांझ को आप पूछेंगे, क्यों? क्योंकि मेरी समझ में, जब मैं यह कह रहा हूं कि किसी के विचार को स्वीकार न करें, तो स्मरण रखें, मेरे विचार को भी स्वीकार नहीं कर लेना है। अन्यथा मैं भी पराया हूं, मैं भी आपसे अलग हूं, मैं भी दूसरा हूं। मैं जो बात कहूं उसे आप स्वीकार कर लें, वह भी खतरनाक है, वह भी मिथ्याज्ञान है। तो मेरी बात को सोचें, विचारें, प्रश्न पूछें। यह एक शुभ बात नहीं है कि मैं यहां बोलूं और आप सुनें। पूछें, सोचें, विचारें। तो सांझ को मैं आपके प्रश्नों के उत्तर देने की कोशिश करूंगा। जो भी आप पूछें, जो भी आपके

ख्याल में आए, आपके विरोध में आए कि यह गलत है, तो मुझे कहें कि यह गलत है। शंका उठाएं, संदेह उठाएं। क्योंकि जो सोचता है, संदेह उठाता है, खोजता है वह एक दिन जरूर पहुंच जाता है। लेकिन जो संदेह नहीं करता, खोजता नहीं, पूछता नहीं, सोचता नहीं, जिज्ञासा नहीं उठाता, वह वहीं पड़ा रह जाता है जहां था।
तो सांझ को मैं आपके प्रश्नों के उत्तर दूंगा और सुबह इन तीन तत्वों
पर चर्चा करूंगा।
एक प्रार्थना अंत में, आने वाले तीन दिनों के लिए दोहरा दूं, मैं कोई गुरु नहीं हूं, क्योंकि मैं मानता हूं कोई अच्छा आदमी किसी का गुरु होने को कभी राजी नहीं होगा। यह बुरे आदमी का लक्षण है कि वह किसी का गुरु होना चाहे, यह अहंकार की ही खोज है। और चूंकि मैं गुरु नहीं हूं इसलिए मेरी किसी भी बात को मानने को आप बाध्य नहीं हैं। अगर मानते हैं तो गलती करते हैं। मेरा निवेदन किसी बात को मानने के लिए नहीं है सोचने और विचारने के लिए है। और अगर सोचने और विचारने से, और सब भांति के संदेह करने पर, और सब भांति के प्रश्न उठाने पर भी कोई बात आपको ठीक मालूम पड़े, तो फिर वह मेरी नहीं रह जाती, आपकी हो जाती है, फिर उससे मेरा कोई संबंध नहीं रह जाता। क्योंकि आपने खोजा, विचारा, सोचा, परखा, जांचा, इतनी कोशिश की, मेहनत की, और फिर आपको कोई बात ठीक लगी, वह आपकी हो गई, उससे फिर मेरा कोई संबंध नहीं है, वह फिर आपका अपना विचार हो गया।
इसलिए मेरे विचार को स्वीकार करने की कोई भी जरूरत नहीं है। उसके लिए निवेदन कर दूं, और इतना ही कि उस पर सोचें, विचारें, खोजें। थोड़ी हमारे मन में चिंतना पैदा हो, थोड़ा मनन पैदा हो। हजारों साल से हम जड़बुद्धियों की तरह बैठे हैं जमीन पर। दोहरा रहे हैं, पुनरुक्त कर रहे हैं पुराने को। लेकिन खोज की हमारी सब दिशाएं बंद हो गई हैं।
भारत की मनीषा हजारों वर्ष से पुनरुक्ति करने वाली हो गई है, सृजनात्मक नहीं रही। उससे कुछ क्रिएटिव, कुछ नष्ट हो गया है। बस रिपीटिटिव हो गई है, दोहराती है, दोहराती है।
दोहराना बंद करें, सृजनात्मक दिशा में थोड़ा अन्वेषण करें। और स्मरण रखें कि जितनी ही सृजनात्मक ऊर्जा होती है उतने ही हम स्रष्टा के करीब पहुंचने लगते हैं। और जितनी गैर-सृजनात्मक, पुनर्वित्यात्मक ऊर्जा होती है, शक्ति होती है, उतने ही हम स्रष्टा से दूर होने लगते हैं।
परमात्मा के निकट वही है जो सृजन करता है। और विचार में और विवेक में
जो सृजन करता है, वह तो उसके बहुत निकट पहुंच जाता है।
मेरी इन बातों को आज की सुबह इतनी शांति से सुना है, हो सकता है कई बातें ऐसी हों जो आपके मन में अशांति पैदा करें। मेरी तो आकांक्षा यही है कि अशांति पैदा हो। क्योंकि हम इतने मुर्दे की भांति हो गए हैं कि हम अशांत ही नहीं होते, हमारे भीतर असंतोष ही नहीं होता, हमारे भीतर चिंता ही पैदा नहीं होती। तो अगर मेरी कोई बात आपको धक्का दे तो मेरी तो आकांक्षा है कि धक्का लगे। मैं तो चाहता हूं कि आप जैसे नींद में सोए हैं कोई आपको जोर से आकर हिला दे, आपके सब सपने गड़बड़ हो जाएं, वह मैं चाहता हूं। वह मैं तीन दिन कोशिश करूंगा पूरी अपनी तरफ से कि आपको जितनी चोट पहुंचा सकूं उतनी पहुंचाऊं। और आप प्रेम से उसे सुनें, और तीन दिनों में सुनेंगे, उसके लिए बहुत-बहुत अनुग्रह, उसके लिए बहुत-बहुत आभारी हूं। अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा के प्रति मेरे प्रणाम स्वीकार करें। बहुत-बहुत धन्यवाद।

सत्य की प्यास
दूसरा प्रवचन

प्रार्थना का अर्थ

मेरे प्रिय आत्मन्!
सत्य की खोज में स्वतंत्रता से बड़ी और कोई भूमिका नहीं है। जिसका मन परतंत्र है, जिसका मन गुलाम है, वह सत्य के दर्शन को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। और मन की गुलामी बहुत प्रकार की है। मन की दासता बहुत प्रकार की है। हमें ख्याल भी नहीं है कि मन कितने प्रकार से परतंत्र है। कितने-कितने रूपों में परतंत्रता की जड़ियों में मन बंधा है। इसका हमें ख्याल भी नहीं है। सुबह मैंने थोड़ी सी बातें इस संबंध में कही हैं एक बात को स्पष्ट करके, जो प्रश्न आए हैं उनके उत्तर दूंगा। सबसे पहले तो यह समझ लेना जरूरी है कि मन की गुलामी क्या है। हो सकता है, और ऐसा बताया गया है हजारों वर्षों से, जिस बात को मैं मन की गुलामी कहता हूं उसी बात को बहुत से लोग ज्ञान समझते रहे हैं और बताते रहे हैं।
तो जब मैं कहता हूं ज्ञान को छोड़ दें, तो बहुत से प्रश्न आए हैं कि ज्ञान को छोड़ देंगे तब क्या होगा? तब तो हमारा सहारा छूट जाएगा। तब तो हम भटक जाएंगे, तब तो मार्ग खो जाएगा।
असल में जिस ज्ञान को मैं छोड़ने को कह रहा हूं अगर वह ज्ञान ही होता तो मैं भी उसे छोड़ने को क्यों कहता। वह ज्ञान नहीं है। न केवल वह ज्ञान नहीं है बल्कि वही परतंत्रता है। और मनुष्य के मन में जिस भांति का प्रचार कर दिया जाए उसी भांति की परतंत्रता पैदा की जा सकती है।
सोवियत रूस में उन्नीस सौ सत्रह में क्रांति हो जाने के बाद वहां के बच्चों को वे सिखा रहे हैं कि कोई ईश्वर नहीं है, कोई आत्मा नहीं है, कोई परलोक नहीं है। उन्नीस सौ सत्रह में उन्होंने यह सिखाना शुरू किया। उस मुल्क में भी भगवान को मानने वाले लोग थे। उस मुल्क में भी मस्जिद थे, मंदिर थे और गिरजे थे। उस मुल्क में भी प्रार्थना होती थी और शास्त्र पढ़े जाते थे। बीस करोड़ के मुल्क में उन्होंने समझाना शुरू किया कि न कोई ईश्वर है, न कोई आत्मा है, न कोई परलोक है। यह सब पाखंड है। उन्होंने समझाया ये सब धर्म जो है अफीम का नशा है। लोग पहले हंसे, लेकिन बच्चों को वे सिखाए चले गए। बीस वर्ष बीतते-बीतते बीस करोड़ लोग भी यही दोहराने लगे कि कोई ईश्वर नहीं है, कोई आत्मा नहीं है, परलोक नहीं है। आज छोटे से बच्चे से रूस में पूछें, तो वह भी हंसेगा।
मेरे एक मित्र रूस में थे, उन्होंने एक बच्चे को स्कूल में पूछा, ईश्वर है?
उस बच्चे ने कहाः पहले हुआ करता था, जब लोग अज्ञानी थे, अब नहीं है। लेकिन हां, कुछ लोग हैं दुनिया में जो अब भी अज्ञान में और अंधकार में हैं वे मानते हैं कि है। छोटे बच्चे ने यह कहा।
बीस करोड़ लोग किस भांति यह कहने लगे कि ईश्वर नहीं है? आप हंसेंगे, कहेंगे, उनको गलत शिक्षा दे दी गई इसलिए कहने लगे। लेकिन मैं यह निवेदन करना चाहता हूं, अगर बीस-पच्चीस वर्ष की शिक्षा से लोग कहने लगते हैं कि ईश्वर नहीं है, तो दो-तीन हजार वर्ष की शिक्षा से अगर कहने लगे हों कि ईश्वर है, तो इसमें कोई फर्क है दोनों बातों में? कोई भी फर्क नहीं है। अगर उनकी बात सिखाई हुई है, तो हमारी बात भी सिखाई हुई है। अगर उनका जो है वह प्रचार है तो हम जो जानते हैं वह भी प्रचार है। हिंदू घर में एक तरह का प्रचार होता है, मुसलमान घर में दूसरे प्रकार का, जैन घर में तीसरे प्रकार का। तीन प्रचारों का परिणाम होता है कि तीन तरह के लोग खड़े हो जाते हैं। और अलग-अलग धर्मों का अलग-अलग प्रचार है। यह जिसको आप ज्ञान समझ रहे हैं यह ज्ञान है या कि कोई प्रोपेगेंडा है या कि कोई प्रचार है? और अगर आपका यह ज्ञान है तो रूस में जो है वह अज्ञान कैसे हो गया? वह भी तो एक प्रचार है, वह भी तो एक प्रोपेगेंडा है।
वहां की हुकूमत समझा रही है लोगों को ईश्वर नहीं है, तो लोग दोहराने लगे कि ईश्वर नहीं है। बच्चे को बचपन से सिखाइए कि ईश्वर नहीं है, तो वह

दोहराने लगता है ईश्वर नहीं है। सिखाइए ईश्वर है, दोहराने लगता है ईश्वर है। मेरा कहना यह नहीं है कि इसमें कौन सही है कौन गलत है, मेरा कहना यह है, जो भी सिखाया जाता है वह सही नहीं हो सकता। सिखाया हुआ और जाने हुए में फर्क है।
एक अनाथालय में मैं गया था। वहां के संयोजकों ने मुझसे कहा कि हम इन बच्चों को धर्म की शिक्षा देते हैं। तो मैंने पूछा कि धर्म की शिक्षा कैसे हो सकती है? मेरी समझ में नहीं आया आज तक कि धर्म की शिक्षा कैसे हो सकती है? धर्म की साधना हो सकती है, शिक्षा नहीं हो सकती। धर्म की शिक्षा नहीं हो सकती, धर्म की साधना हो सकती है। मैंने पूछा, लेकिन कैसी शिक्षा होती है? विज्ञान की शिक्षा हो सकती है, धर्म की शिक्षा नहीं हो सकती।
पूछा है इसमें प्रश्न। विज्ञान की शिक्षा इसलिए हो सकती है, साइंस की शिक्षा हो सकती है, क्योंकि साइंस का संबंध बाहर से है। धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती, धर्म का संबंध भीतर से है। साइंस सिखाई जा सकती है क्योंकि साइंस ज्ञान नहीं है, साइंस इनफर्मेशन है, सूचना है। बाहर के संबंध में कुछ बातें सिखाई जा सकती हैं। बाहर के संबंध में बाहर से सिखाया जा सकता है, भीतर के संबंध में बाहर से कैसे सिखाया जा सकता है? तो विज्ञान की शिक्षा हो सकती है, धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती। हां, हिंदू की शिक्षा हो सकती है, मुसलमान की शिक्षा हो सकती है, जैन की, ईसाई की शिक्षा हो सकती है क्योंकि ये धर्म नहीं हैं, इनकी शिक्षा हो सकती है। बाइबिल की शिक्षा हो सकती है, गीता की और कुरान की शिक्षा हो सकती है। धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती। अगर धर्म की शिक्षा हो सकती तो हमने दुनिया को धार्मिक कभी का बना लिया होता। हमने स्कूल खोल दिए होते, विद्यालय खोल दिए होते, दुनिया धार्मिक हो गई होती।
जीवन में जो भी गहरा है उसकी कोई शिक्षा नहीं होती। प्रेम की कोई शिक्षा हो सकती है? कोई स्कूल हो सकता है जहां हम प्रेम करना सिखा दें लोगों को? और अगर ऐसा कोई स्कूल हो जहां हम प्रेम करना सिखा दें, तो आप पक्का मान लेना उस स्कूल से सीखे हुए बच्चे फिर कभी प्रेम न कर सकेंगे। क्योंकि वे बच्चे एक्टिंग करना सीख जाएंगे प्रेम की, अभिनय करना सीख जाएंगे। वे सब भांति सीख जाएंगे कैसे प्रेम किया जाए। और जो सब भांति सीख जाता है कैसे प्रेम किया जाए, उसके जीवन में फिर प्रेम का अंकुर कभी नहीं खिलता, क्योंकि वह अभिनय से तृप्त हो जाता है। वह प्राण उसके कभी प्रेम से नहीं भर पाते। अभिनेता कभी प्रेम नहीं कर पाते। हालांकि दिन-रात वे धंधा प्रेम का करने का करते हैं। अभिनेता, एक्टर कभी प्रेम नहीं कर सकता। कर नहीं पाएगा। एक्टिंग इतनी ज्यादा सीख लेगा कि वास्तविक प्रेम के झरने सुख जाएंगे, निकल नहीं पाएंगे। तो प्रेम सिखाया नहीं जा सकता। जब प्रेम नहीं सिखाया जा सकता तो परमात्मा कैसे सिखाया जा सकता है। परमात्मा तो प्रेम से बहुत प्रगाढ़, बहुत गहरा है। धर्म कैसे सिखाया जा सकता है। जीवन में जो भी श्रेष्ठतम है वह सिखाया नहीं जाता।
तो मैंने उनसे कहा कि कैसे सिखाते होंगे? उन्होंने कहा कि आप पूछ लें। कोई भी प्रश्न पूछ लें। मैंने उनसे कहाः आप ही पूछें, मैं सुनूंगा। उन्होंने बच्चों से पूछा कि ईश्वर है? उन सब बच्चों ने हाथ हिला दिए कि हां, ईश्वर है। आत्मा है? उन बच्चों ने हाथ उठा दिए, आत्मा है। जैसा वे गणित सीख गए थे वैसे ये बातें भी सिखा दी गई थीं। छोटे-छोटे बच्चे, उन पर मुझे दया आने लगी। उनसे पूछा आत्मा कहां है? उन्होंने सबने हाथ उठा कर अपनी छातियों पर रख दिए कि यहां।
मैंने एक छोटे से बच्चे से पूछाः हृदय कहां है?
उसने कहाः यह तो हमें बताया नहीं गया। आत्मा कहां है? तो उसने कहा-- यहां! और मैंने पूछाः हृदय कहां है? उसने कहाः यह तो हमें बताया नहीं गया। यह तो हमारी किताब में नहीं है।
इन बच्चों को हमने सिखा दिया ईश्वर है? ये हाथ हिलाने लगे। यह कितनी झूठी बात हमने इनको सिखा दी। इन्हें कुछ भी पता नहीं है ईश्वर के होने का।
हमने इन्हें सिखा दिया आत्मा, उन्होंने हाथ उठा कर बता दिया यहां! कितना

हाथ झूठा है। इस हाथ को कुछ भी पता नहीं कि यहां क्या है। लेकिन हमने सिखा दिया।
अब यह सीख लेगा अच्छी तरह से। जिंदगी भर दोहराता रहेगा यही। इसको ज्ञान कहिएगा? यह ज्ञान है? जब भी जिंदगी में सवाल उठेगा ईश्वर है? इसकी सिखी हुई बात भीतर से बोलेगी, हां, है। और यह जानता नहीं है। और इसको भ्रम पैदा होगा कि मैं जानता हूं। और जब भी कोई पूछेगा, आत्मा है? यह कहेगा, है। यह वही बच्चा है सिखाया हुआ। बूढ़ा भी हो जाएगा, और जब भी सवाल उठेगा आत्मा कहां है, इसका हाथ मशीन की तरह यहां चला जाएगा और कहेगा, यहां।
ये सब सिखी हुई झूठी बातें हैं। यह हाथ झूठा है। यह हां ईश्वर के प्रति झूठी है। यह जानता तो नहीं। इसको धर्म की शिक्षा कहते हैं। इस भांति सिखा हुआ व्यक्ति कभी भी धार्मिक नहीं हो सकेगा। क्योंकि इसके पहले कि इसके भीतर खोज पैदा होती, इंक्वायरी पैदा होती, इसे कुछ उत्तर सिखा दिए गए। इसके पहले कि इसके जीवन में प्रश्न खड़ा होता, इसे उत्तर दे दिया गया। जिनके जीवन में बिना प्रश्न खड़े उत्तर मिल जाते हैं उनकी खोज बंद हो जाती है। हम सबकी खोज बंद हो गई है। फिर वे उत्तर चाहे किसी के भी हों, चाहे रूस में नास्तिक के उत्तर हों और चाहे भारत में आस्तिक के और चाहे मुसलमान के, चाहे हिंदू के, चाहे ईसाई के। असल में जीवन के संबंध में बाहर से दिए गए उत्तर भीतर के प्रश्नों की हत्या बन जाते हैं। और जब भीतर के प्रश्नों की हत्या हो जाती है तो खोज बंद हो जाती है, आदमी वहीं रुका रह जाता है। जीवन भर वहीं रुका रह जाता है। इसको आप ज्ञान कहते हैं? इसको आप सहारा कहते हैं? यह सहारा नहीं है और न यह ज्ञान है। इसको मैंने कहा कि इसे छोड़ दें। यह बंधन है, यह गुलामी है, यह प्रोपेगेंडा है। और यह प्रोपेगेंडा से हम सभी पीड़ित हैं और सभी परेशान हैं। सारी दुनिया इससे पीड़ित और परेशान है। धर्म की खोज के लिए बाहर से जो प्रचार है उससे छुटकारा होना चाहिए। तो हमें डर होता है। प्रश्न पूछे हैं, हमें डर होता है कि अगर इसे हम छोड़ देंगे तो सहारा खो जाएगा। यह सहारा है ही नहीं। यह तो बाधा है। लेकिन होता यह है कि बहुत दिन तक जंजीरों में बंधे रहने से जंजीरों से भी प्रेम हो जाता है।
ऐसी घटनाएं घटी हैं। फ्रांस में क्रांति हुई, तो वहां के एक किले में जहां कि फ्रांस के सभी जघन्य अपराधी बंद किए जाते थे, कोई दो हजार कैदी बंद थे। वे सब आजन्म कैदी थे। जीवन भर उन्हें वहां रहना था। वेस्टाइल के किले में वे बंद थे। क्रांतिकारियों ने सोचा, जैसे ही उनके हाथ में ताकत आई, उन्होंने सोचा कि सबसे पहले वेस्टाइल के किले को तोड़ दें और वहां के कैदियों को मुक्त कर दें। वे गए उन्होंने दरवाजे तोड़ दिए। और उन्होंने कैदियों से कहाः बाहर निकल आओ। उसमें ऐसे कैदी थे जो साठ-साठ वर्ष से भी बंद थे। नब्बे वर्ष की उम्र का कैदी था उसमें जो साठ साल से बंद था। अंधेरी कोठरी में हाथ पर मजबूत लोहे की और पैर में जंजीरें थीं जो साठ वर्ष से लटकी थीं--उन्हीं के साथ सोया था, उन्हीं के साथ उठा था, उन्हीं के साथ बैठा था। जब उसकी जंजीरें तोड़ दी गईं और उसे बाहर निकाला गया, तो वह बोला कि मुझे बहुत कमी-कमी मालूम पड़ती है, बिना जंजीरों के मुझे ऐसा लगता है मेरे शरीर का कुछ हिस्सा छूट गया, साठ साल। कैदियों को उन्होंने जबरदस्ती बाहर कर दिया। आपको पता भी नहीं होगा, ख्याल भी नहीं होगा, आधे कैदी शाम होते- होते वापस आ गए। और उन कैदियों ने कहाः क्षमा करें, हमें बाहर अच्छा नहीं लगता। हम यहीं रह लेंगे, हम यहीं ठीक हैं। ये अंधेरी कोठियां ठीक हैं हम इनमें रहे बहुत दिन, ये हमें प्रीतिकर हो गई हैं। और बिना जंजीरों के हम नहीं रह सकते। आज दोपहर हमने सोने की कोशिश की तो हम सो भी नहीं पाए। बिना जंजीरों के अच्छा नहीं लगता है। क्या कहिएगा इनसे? जंजीरें भी साथी हो गईं। गुलामी भी साथी हो जाती है। और उसी को हम सहारा भी समझने लगते हैं। गुलामी में खतरा नहीं है, लेकिन गुलामी को जिसने सहारा समझ लिया उसके लिए खतरा हो गया। गुलामी खतरनाक नहीं है, अगर मेरे मन में यह ख्याल हो कि यह गुलामी है और इसे तोड़ देना है। लेकिन अगर गुलामी सहारा मालूम होने लगे, तब तो डूब गई बात। क्योंकि अब छूटेगा कौन? मुक्त कौन होगा।

तो जिस ज्ञान को मैंने छोड़ने के लिए कहा है असल में वह ज्ञान नहीं है, नहीं तो ज्ञान को छोड़ने के लिए कौन कहेगा। वह ज्ञान नहीं है। लेकिन पूछा है प्रश्नों में कि अगर हमें कोई न सिखाएगा तो हम सीखेंगे कैसे? हमारा जीवन सब कुछ हम दूसरों से सीखते हैं। दुकान चलाते हैं, दूसरों से सीखते हैं। डाक्टरी सीखते हैं, इंजीनियरिंग सीखते हैं, दूसरों से सीखते हैं। जीवन में जो कुछ है हम दूसरों से सीखते हैं। इसलिए यह भ्रम पैदा होता है कि जो भीतर छिपा है उसको भी हमें दूसरों से सीखना पड़ेगा। नहीं, जो भीतर छिपा है उसे किसी दूसरे से सीखना नहीं पड़ता। जो भीतर छिपा है उसे उघाड़ना पड़ता है सीखना नहीं पड़ता। उसके ढक्कन हटाने पड़ते हैं। उसे खोजने कहीं और नहीं जाना पड़ता। और जो भीतर छिपा है उस पर सबसे बड़े जो पत्थर की तरह ढक्कन हैं वे उस सिखावन के हैं जो हमने दूसरों से पकड़ लिए हैं। तो मैं यह नहीं कहता कि आप विज्ञान सीखने दूसरों से न जाएं, विज्ञान तो दूसरों से सीखना ही पड़ेगा। गणित दूसरों से सीखना पड़ेगा। दुकान चलानी है तो दूसरों से सीखना पड़ेगा। रास्ते पर चलना है तो बाएं चलना है, यह भी दूसरों से सीखना पड़ेगा। जो भी संसार का है वह दूसरों से सीखना पड़ेगा, क्योंकि संसार का सब कुछ बाहर है। लेकिन जो भी परमात्मा का है वह किसी से भी नहीं सीखना पड़ेगा, क्योंकि वह सब भीतर है। ये दोनों को जब आप मिला लेते हैं तो मुसीबत खड़ी हो जाती है। बाहर जो कुछ भी है उसे सीखने के लिए गुरु की जरूरत है। भीतर जो है उसके लिए किसी गुरु की कोई भी जरूरत नहीं है। इन दोनों में भेद करना जरूरी है।
इन दोनों को एक सा मत समझ लें। ये एक से नहीं हैं। जो बाहर का है वह बाहर से सीखना पड़ता है। जो भीतर का है वह भीतर से जगाना पड़ता है। लेकिन हमारी हालत--एक कहानी कहूं उससे समझ में आ जाए।
राबिया नाम की फकीर औरत एक दिन संध्या को अपनी सड़क के सामने, अपने घर के, झोपड़े के बाहर कुछ ढूंढती हुई देखी गई। बूढ़ी औरत थी, कुछ ढूंढती थी। राह से कुछ लोग निकलते थे, उन्होंने पूछा कि क्या ढूंढती हो? हम भी साथ दे दें। उसने कहाः मेरी सुई खो गई है कपड़ा सीने की। सुई खो गई। वे लोग भी झुक गए रास्ते पर और खोजने लगे। छोटी सी सुई थी। तब उनमें से एक ने पूछा कि ठीक-ठीक बताओ किस जगह गिरी है? छोटी सुई है, रास्ता बड़ा है, रात उतर रही है, खोजना मुश्किल है। ठीक बताओ किस जगह गिरी है? उस स्त्री ने कहाः यह तो न पूछो तो अच्छा। क्योंकि सुई तो मेरे घर के भीतर गिरी है। वे लोग हंसने लगे, उन्होंने कहाः तुम बड़ी पागल मालूम पड़ती हो। तुम बहुत पागल हो, सुई अगर भीतर गुमी है तो बाहर कैसे खोज रही हो? उस बूढ़ी स्त्री ने कहाः सुई तो भीतर गिरी, लेकिन मैं बहुत गरीब हूं, मेरे घर में कोई दीया नहीं है, कोई रोशनी नहीं है। भीतर सुई गिरी तब सांझ होने के करीब थी, बाहर दहलान में थोड़ी सी रोशनी थी। तो बिना रोशनी के कोई खोज सकता है? तो मैंने सोचा जहां रोशनी है वहां खोजूं, तो मैं बाहर खोजती हुई आ गई। मैं दहलान में जब तक खोजती थी, वहां तो मिली नहीं। तब तक रोशनी और भी सूरज नीचे उतर गया। तो सड़क पर थोड़ी सी रोशनी थी तो मैं सड़क पर आ गई। बिना रोशनी के सुई को कैसे खोजूं? तो जहां रोशनी है वहां खोजी, अब मैं यहां खोज रही हूं। और घर में तो रोशनी नहीं है। तो उन लोगों ने कहाः तुम बहुत पागल मालूम पड़ती हो। सुई जहां हैं वहां रोशनी ले जाओ। जहां रोशनी है वहां खोजने से क्या होगा अगर वहां खोई ही नहीं है। उस बूढ़ी स्त्री ने कहाः तुम मुझे पागल कहते हो, लेकिन मैं सारी दुनिया को ऐसे ही देखती हूं कि सभी लोग बाहर खोज रहे हैं। जो भीतरी गुमा है उसे बाहर खोज रहे हैं। तो मैं तो दुनिया जैसा करती है वैसा ही मैं कर रही हूं।
सभी लोग बाहर खोज रहे हैं उसे जो भीतर गुमा है। असल में हमारी आंख बाहर खुलती हैं, हाथ बाहर फैलते हैं, कान बाहर सुनते हैं, हमारी सभी इंद्रियों के द्वार बाहर खुलते हैं। इसलिए हम बाहर खोजना शुरू कर देते हैं बिना इस बात को जाने हुए कि जिसे हम खोज रहे हैं वह कहां है। अगर आप पदार्थ को खोज रहे हों, तो खोज ठीक है, वह बाहर है। अगर आप चांद-तारों पर जाने की कोशिश कर रहे हों, तो ठीक कोशिश है, बाहर खोजना होगा। यान बनाने होंगे और चांद-तारों पर जाना होगा। इसलिए विज्ञान की खोज तो ठीक है,

क्योंकि जिसे वह खोज रहा है वह बाहर है। लेकिन जब कोई मनुष्य आत्मा को खोजने लगता है बाहर, तो गलती में पड़ जाता है।
आत्मा कोई चांद-तारा नहीं है, जिस पर जाने के लिए हमें कोई यान बनाना पड़े। और आत्मा कोई बाहर की वस्तु नहीं है जिसे समझने को हमें किसी प्रयोगशाला में जाना पड़े। और आत्मा कोई ऐसी बात नहीं है कि जिसे कोई दूसरा इशारा कर सके। आत्मा कुछ है जो मेरा स्वरूप है, जो मैं हूं। इसलिए यदि मैं परिपूर्ण रूप से शांत होकर भीतर देख सकूं, तो उसे पा लिया जाएगा। यदि मैं परिपूर्ण मौन होकर भीतर ठहर सकूं, तो उसे खोज लूंगा। इसलिए सवाल यह नहीं है कि कोई मुझे वहां ले जाए, सवाल केवल इतना है कि क्या मैं भीतर शांत होकर देखने में समर्थ हूं। और यह हमारा तथाकथित ज्ञान हमें भीतर नहीं ले जाता बाहर अटकाता है। किसी शास्त्र में उलझा देता है, किसी सिद्धांत में, किसी वाद में, किसी इज्म में, किसी आइडियालाजी में, बाहर उलझाता है। और फिर उस उलझन में, उस शब्द में और शास्त्र में और सिद्धांत में, विचार में, उसके ऊहापोह में हम जीवन को व्यतीत करते हैं। स्मरण रखिए, शास्त्रों में शब्दों से ज्यादा और क्या है। हो भी नहीं सकता कुछ ज्यादा। सत्य है भीतर, शास्त्रों में है शब्द।
और स्मरण रखिए कि शास्त्रों के ज्ञान को सीख कर आपके भीतर शब्दों की संपदा बढ़ सकती है। लेकिन शब्दों की संपदा जितनी बढ़ जाती है भीतर और विचार जितने ज्यादा संगृहीत हो जाते हैं भीतर, उतना ही भीतर मौन और शांत होना असंभव हो जाता है, कठिन हो जाता है। भीतर मौन होने के लिए शब्द छोड़ने होंगे, विचार छोड़ने होंगे, निःशब्द और निर्विचार में ठहरना होगा। तो आप जिनको सहारा कहते हैं मैं उनको बाधा कहता हूं। सब शब्द बाधा है, वह मेरा हो या किसी और का। अगर उसे पकड़ लेते हैं, तो भीतर निःशब्द होना असंभव हो जाएगा। निःशब्द हो जाएं, मौन हो जाएं, तो जाना जा सकता है। और पंडित इतना ज्यादा शब्दों से भर जाता है कि वह तो कभी मौन नहीं हो पाता। वह तो रात भी सपने देखना है शास्त्रों के। और दिन में भी उसी ऊहापोह में होता है। दिन-रात रटता है, रटता है, रटता है। एकाध शब्द को पकड़ लेता है राम-राम, राम-राम, तो राम-राम ही रटता रहता है। कोई सूत्र पकड़ लेता है उसे रटता रहता है। या फिर शब्द और विचार इकट्ठे कर लेता है। और उन इकट्ठे विचारों की पुंजीभूत करता जाता है। और जितने विचार बढ़ते जाते हैं सोचता है कि मैं ज्ञान को उपलब्ध हो रहा हूं।
नहीं, ज्ञान उपलब्ध विचारों के संग्रह से नहीं होता बल्कि जहां कोई विचार नहीं होता उस शांत और निस्तब्ध अवस्था में ही ज्ञान उत्पन्न होता है। विचारों का संग्रह ज्ञान नहीं है। विचारों का मौन हो जाना ज्ञान है। इसलिए जिसे मैंने कहा कि ज्ञान को छोड़ दें, वह ज्ञान नहीं है, वह केवल शब्द की संपदा है, उसमें जो भटकता है वह भटकता चला जाता है। यह सहारा यह सहारा नहीं है, बाधा है, बीच में रुकावट है।

पूछे हैं कुछ और प्रश्न।
पूछा है कि मंदिर है, पूजा है, जप है, मूर्तियां हैं, क्या इन सबमें धर्म नहीं है?

मैं निवेदन करूं, मनुष्य जो भी बनाएगा उसमें धर्म नहीं हो सकता। मनुष्य जो भी बनाएगा उसमें धर्म नहीं हो सकता, वह चाहे मूर्ति बनाए, चाहे शास्त्र बनाए, चाहे मंदिर बनाए। बल्कि वह इन सारी चीजों को बना कर जीवन में और अधर्म के अड्डे बना देगा। हमारे तीर्थ, हमारे मंदिर, हमारी मूर्तियां, हमारे पूजागृह क्या बन गए हैं? उपद्रवों की जड़, केंद्र। उनके केंद्रों से ये सारे जीवन में विष व्याप्त होता चला जाता है। क्यों? क्योंकि हम जो भी बनाते हैं हमीं तो बनाएंगे न? जो हम बनाएंगे वह हमसे बेहतर कैसे होगा? मैं बनाऊंगा कोई चीज मुझसे बेहतर नहीं हो सकती। मंदिर बनाने वालों से मंदिर बेहतर नहीं हो सकता। कैसे होगा? बनाने वाले से उसकी बनाई गई चीज बड़ी कभी नहीं होती। कभी हो भी नहीं सकती। तो अगर यहां इतने बैठे हुए लोग एक मंदिर बना लें तो वह मंदिर हम सबके जुड़े श्रम से बनेगा,

हमारी जुड़ी बुद्धि से वह हमसे बड़ा नहीं होगा। हम छोटे होंगे हमारा मंदिर भी छोटा होगा। हम ओछे होंगे हमारा मंदिर भी ओछा होगा। और हम जो भगवान की मूर्ति बनाएंगे, हम हीं तो बनाएंगे न? वह मूर्ति हमसे बेहतर नहीं हो सकती, हमसे बदतर होगी। आदमी ने जो कुछ बनाया है वह आदमी से छोटा होगा। है। और उसके परिणाम हमारे सामने हैं। उसके परिणाम ये हुए हैं कि हमारे मंदिर और मस्जिद हमें भगवान से जोड़े यह तो दूर उन्होंने हमें आदमी को आदमी से जरूर तोड़ दिया है। और जो चीज आदमी को आदमी से तोड़ देती हो, क्या आप सोचते हों वह आदमी को परमात्मा से जोड़ सकेगी? क्या यह संभव है? पड़ोसी से जिसने तोड़ दिया हो वह परमात्मा से जोड़ सकेगी?
एक रात एक चर्च में एक नीग्रो ने आकर दरवाजा खटखटाया। पादरी ने दरवाजा खोला और देखा कि कोई काला आदमी है। काले आदमी के लिए तो उस चर्च में प्रवेश का कोई इंतजाम न था। वह सफेद चमड़ी के लोगों का चर्च था। उसमें काली चमड़ी के लोगों के लिए कोई जगह न थी। आज तक एक भी ऐसा मंदिर नहीं बन सका जिसमें सबके लिए जगह हो। किसी के लिए है, किसी के लिए नहीं है। उस चर्च में भी नहीं थी। लेकिन पादरी ने, जमाना बदल गया है, पुराना जमाना होता तो धक्के देकर बाहर करवा देता, कि शूद्र यहां कहां चला आया। लेकिन जमाना बदल गया है, लोकतंत्र की हवाओं ने सारी दुनिया का दिमाग खराब कर दिया है। कहीं भगाए, कहीं उपद्रव खड़ा हो जाए, इसलिए उसने होशियारी की, उसने उस काले आदमी को कहाः मेरे मित्र, मंदिर का द्वार तो खोल दूं, लेकिन किसलिए भीतर आना चाहते हो? उस आदमी ने कहाः इसलिए ताकि मैं परमात्मा को पा सकूं। तो उस पादरी ने कहाः इसके पहले कि तुम परमात्मा को पाने की कोशिश करो, जाओ, अपने मन को शुद्ध करो, चित्त को निर्मल बनाओ, मन से विकार दूर करो तब आना, ऐसे कहीं भगवान मुफ्त में मिलता है।
वह नीग्रो वापस लौट गया। सीधा आदमी होगा। अगर सीधा न होता तो चर्च में जाता ही क्यों? अगर सीधा न होता तो परमात्मा की खोज ही उसके मन में क्यों पैदा होती। सीधा था, भोला-भाला होगा, इसकी बात मान लिया और वापस लौट गया। महीने दो महीने बीत गए। वह पादरी सोचता था शायद फिर कभी आए। लेकिन नहीं आया। तो तरकीब काम कर गई, न होगा चित्त शुद्ध, न आएगा वापस। लेकिन एक दिन रास्ते पर उसे देखा तो वह बड़ा शांत चला जा रहा था। उसकी आंखों में भी बड़ी शांति मालूम पड़ती थी, उसके चेहरे पर भी बड़ा प्रकाश दिखता था। तो उस पादरी ने उसे रोका और कहा कि सुनो, आए नहीं दुबारा? उसने कहाः मैं तो आता, लेकिन एक बाधा आ गई। क्या बाधा आ गई? उसने कहा कि मैं निरंतर प्रार्थना में, शांति में, मौन में रहने लगा ताकि चित्त शुद्ध हो जाए। अपने विकारों को विसर्जित करने लगा। कोई दो महीने बीतने पर एक रात मुझे सपने में भगवान ने दर्शन दिए। और उन्होंने मुझसे पूछा कि इतनी तपश्चर्या, इतनी साधना किसलिए कर रहा है? तो मैंने कहा कि वह जो चर्च है हमारे गांव में मैं उसमें प्रवेश करना चाहता हूं ताकि आपके दर्शन कर सकूं। तो भगवान ने मुझसे कहाः तू बिल्कुल पागल है, यह काम छोड़ दे, यह काम बिल्कुल असंभव है, मैं खुद दस साल से कोशिश कर रहा हूं वह पादरी मुझे चर्च में घुसने नहीं देता। तो दस साल से में खुद कोशिश कर-कर के हार गया हूं, तू गरीब नीग्रो तुझे कौन घुसने देगा, मुझे भी वह घुसने नहीं देता बाहर से ही लौटा देता है कि हटो यहां तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं है। यह सपने में भगवान ने उस नीग्रो को कहा। भगवान ने अतिशयोक्ति नहीं की। शायद डर के कारण दस वर्ष कहे कहीं नीग्रो घबड़ा न जाए। लेकिन मुझसे भी मेरे सपने में उस भगवान ने कहा, कि दस वर्ष नहीं मैं दस हजार साल से कोशिश कर रहा हूं। और उस चर्च में नहीं किसी चर्च में और किसी मंदिर में मुझे आज तक नहीं घुसने दिया गया है क्योंकि पादरी-पुरोहित दरवाजे पर रोक देते हैं, अंदर मत आना। आज तक किसी मंदिर में भगवान प्रवेश नहीं पा सका है। नहीं पा सकेगा। क्योंकि भगवान है बड़ा और मंदिर हैं छोटे। भगवान है विराट और मंदिर हैं सीमित। और भगवान कोई सीमा नहीं और मंदिरों में बड़ी सख्त दीवालें हैं, दरवाजे लोहे के हैं और बाहर संतरी खड़ा हुआ है, घुसना बहुत मुश्किल है।
मंदिर हैं आदमी के बनाए हुए, आदमी खुद बहुत छोटा है। उसके मंदिर उससे
भी ज्यादा छोटे हैं। लेकिन हम सस्ते धर्म के प्रेमी हैं, सुबह उठ कर मंदिर

हो आते हैं और सोचते हैं कि चलो धर्म हो गया। एक आदमी सुबह से उठ कर मंदिर हो आता है और धार्मिक होने का मजा ले लेता है। धार्मिक होना इतनी आसान बात नहीं है। इतनी सस्ती और इतनी बाजारू बात नहीं है कि आप एक मकान से दूसरे मकान में चले गए और धार्मिक हो गए। और स्मरण रखिए, अगर बात इतनी आसान होती कि एक मकान में जाने से अगर कोई आदमी धार्मिक हो जाता, तो हम ऐसे बड़े-बड़े मकान बनाते और लोगों को रोज सुबह-शाम उनमें से जबरदस्ती निकलवा देते। लेकिन यह नहीं हो सका। यह हो नहीं सकता।
आप अपने घर में बैठे हुए जैसे आदमी हैं मंदिर में जाकर आप दूसरे आदमी नहीं हो सकते। आप वही आदमी होंगे। मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ते वक्त आप जैसे आदमी हैं मंदिर में पहुंच कर दूसरे आदमी कैसे हो जाएंगे? आप वही आदमी होंगे।
गंगा बहती है हिमालय से समुद्र तक, तो कोई सोचता हो कि सिर्फ प्रयाग
पर आकर पवित्र हो जाती है उसके पहले पवित्र नहीं रहती और पीछे फिर पवित्र नहीं रहती, तो वह पागल है। अविचछिन्न धारा है, कंटिन्युअस धारा है।
जीवन की और चित्त की भी अविच्छिन्न धारा है। आपके मंदिर में जाने से
आप धार्मिक नहीं हो जाते। आप अगर धार्मिक हों तो जहां आप हैं वहां मंदिर जरूर हो सकता है। लेकिन आप किसी मंदिर में जाकर धार्मिक नहीं हो सकते। आप अगर धार्मिक हों तो जहां आप बैठ जाएं वह जगह जरूर मंदिर हो जाती है। लेकिन कोई जगह मंदिर नहीं है, जहां आप चले जाएं और धार्मिक हो जाएं।
चेतना का परिवर्तन व्यक्ति को धार्मिक बनाता है, मकानों में आना-जाना नहीं। और जिन मूर्तियों के सामने आप हाथ जोड़ कर खड़े हैं बहुत बच्चों जैसा काम कर रहे हैं। वे मूर्तियां आपकी अपनी बनाई हुई हैं और उनको आप भगवान कह रहे हैं।
चीनी भगवान की मूर्ति बनाता है तो गाल की हड्डी वैसी बनाता है जैसी चीनी की होती है। और नीग्रो भगवान की मूर्ति बनाता है तो लटके हुए मोटे होंठ बनाता है, घुंघराले बाल बनाता है, जैसा नीग्रो होता है। और हिंदू भगवान की मूर्ति बनाता है, तो हिंदू की शक्ल। और दुनिया में जितनी शक्ल के लोग हैं अपनी-अपनी शक्ल में भगवान को बनाते हैं। अगर घोड़े और गधे भगवान को बनाएं, तो वे आदमी की शक्ल में नहीं बना सकेंगे। नहीं बना सकेंगे, वे घोड़ों की शक्ल में बनाएंगे। अगर बंदर बनाएं तो बंदर की शक्ल में बनाएंगे। जो भी भगवान को बनाएगा वह अपनी इमेज, अपनी शक्ल में बनाएगा। यह मनुष्य के अहंकार की पूजा हो रही है, यह कोई भगवान नहीं है। हम अपने अहंकार की पूजा कर रहे हैं अपनी ही मूर्ति बना कर। खड़े हैं उसके सामने हाथ जोड़े हुए। ये सारी मूर्तियां मनुष्यों की अपनी मूर्तियां हैं। और इनकी पूजा को हम कहते हैं कि भगवान की पूजा। भगवान को हम जानते भी नहीं हैं, पूजा क्या करेंगे? प्रेम क्या करेंगे? भगवान का हमें कोई पता भी नहीं। बस वही प्रचार है कि ये भगवान हैं इनको भगवान मानो और पूजो। और हम पूज रहे हैं। और जो आदमी बिना सोचे और विचारे, और बिना विवेक और जिज्ञासा किए और बिना संदेह किए इनको पूजे चला जाता है, वह आदमी गुलाम है। वह आदमी हद्द दर्जे की गुलामी में है। उस तरह का आदमी कभी भी, उस स्थिति को नहीं पा सकता जहां कि धर्म के सत्य का उदय हो जाए और धर्म का सूर्य उसके जीवन को प्रकाशित कर दे। उसकी भूमिका भी नहीं है उस आदमी के पास।
भूमिका के लिए इस तरह के बच्चों जैसे काम बंद करने पड़ेंगे। छोटे-छोटे बच्चे, गुड्डे-गुड्डियां बना लेते हैं उनका विवाह रचाते हैं, तो हम हंसते हैं, हम कहते हैं, ये बच्चे हैं, चाइल्डीस और हम राम का जुलूस निकालें और विवाह रचाएं तो हम समझते हैं हम प्रौढ़, हम समझदार, हम चाइल्डीस नहीं, हम बच्चे जैसे नहीं हैं। और समझते हैं कि यह धर्म का काम हो रहा है।
यह बच्चों जैसी बुद्धि धार्मिकता नहीं है। धार्मिकता बड़ी प्रौढ़ता की बात है। बड़ी प्रौढ़ता की बात है। और उस प्रौढ़ता के लिए एक सूत्र स्मरण रखें, जो भी मनुष्य का बनाया हुआ है वह कभी उस तक नहीं ले जा सकेगा जो कि किसी का भी बनाया हुआ नहीं है। असृष्ट है परमात्मा, उसकी कोई सृष्टि नहीं, उसे किसी ने बनाया नहीं। उस तक जाना हो, तो कुछ बनाने कि जरूरत नहीं है, अपने को मिटाना पड़ता है। परमात्मा तक जिसको जाना हो उसे कुछ बनाने की जरूरत नहीं,

खुद को मिटाना पड़ता है। तो धार्मिक भगवान की मूर्ति नहीं बनाता, अपनी मूर्ति को मिटा देता है। और जिस दिन अपनी मूर्ति मिट जाती, उस दिन भगवान प्रकट हो जाते हैं। लेकिन हम भगवान की मूर्ति बनाते हैं, अपनी मूर्ति नहीं मिटाते हैं, अपनी मूर्ति को तो मजबूत करते हैं और भगवान की मूर्ति और बनाते हैं।
अपनी मूर्ति को मिटाइए, अपनी मूर्ति अपना अहंकार, यह मेरा होना, यह मैं हूं कुछ। यह मेरी मूर्ति जो है इसको तोड़ना पड़ेगा। और यह मेरी मूर्ति टूट जाए, तो उसका रूप प्रकट होगा जो किसी का बनाया हुआ नहीं है। लेकिन मनुष्य का अहंकार अदभुत है। वह अपने को तो मिटाता नहीं, हद्द मौज में आ जाता है भगवान तक को गढ़ने लगता है, भगवान तक को बनाता है। हमने कारखाने खोले हुए हैं भगवान को बनाने के जगह-जगह। और इन सब कारखानों में और दुकानों में झगड़ा होता है जो कि स्वाभाविक है। क्योंकि एक दुकान कहती है कि हमारी दुकान के बने हुए भगवान ही सच्चे हैं, तुम्हारी दुकान के बने हुए भगवान झूठे हैं। बाजार में हमारी दुकान के भगवान चलने चाहिए, तुम्हारे को न चलने देंगे। तलवारें चलती हैं, लकड़ियां चलती हैं, हत्याएं होती हैं, क्योंकि हमारे कारखाने में जो भगवान ढालते हैं वही सच्चा भगवान है, तुम्हारे कारखाने में ढला हुआ भगवान झूठा है।
मनुष्य भगवान को ढालता है फिर बाजार में बेचता है। दुकानें खोली हुई हैं। और इन दुकानों का कुल परिणाम इतना हुआ है कि मनुष्य निर्मित भगवान के इर्दगिर्द मनुष्यता को हम घुमा रहे हैं। और परमात्मा से आदमी रोज-रोज दूर होता चला गया है। यह इसको हम कहते हैं पूजा और प्रार्थना और मंदिर। अगर ये मंदिर ही धर्म होते, तो जमीन पर कितने मंदिर हैं, कितनी मस्जिदें हैं; कितने संन्यासी हैं, कितने पुजारी हैं, कितने पादरी हैं, कुछ हिसाब है। इन सबकी निरंतर उपदेश चल रहे हैं, निरंतर पूजा हो रही है, मंदिरों में घंटियां बज रही हैं और जमीन रोज-रोज अधार्मिक होती जा रही है, कुछ समझ में नहीं पड़ता यह क्या हो रहा है। इतने मंदिर और मस्जिद और जमीन, जमीन नरक से बदतर। धर्म, धर्म का कोई पता नहीं। यह क्या मामला है? अगर कोई मुझसे कहे कि मेरे घर में बहुत गुलाब के फूल लगे हैं, बहुत चमेली के फूल आए हैं, बहुत मेरे घर में सुगंध ही सुगंध फूलों की भर गई है। और वहां जाकर हम पाएं कि दुर्गंध ही दुर्गंध है और एक फूल नजर न आए, तो क्या ख्याल पैदा होगा? ख्याल पैदा होगा कि इस आदमी ने कागज के फूलों को शायद असली फूल समझ लिया है। इसीलिए तो कहता है फूल बहुत हैं मेरे घर में लेकिन न सुगंध आती है, न फूलों की हवाओं में कोई सुगंध के तार उड़ते हैं, और न फूल, जीवंत फूल कहीं दर्शन में आते हैं, तो शायद इसने कुछ नकली फूलों को फूल समझ लिया है।
जमीन पर इतने धर्म-स्थान हैं लेकिन धर्म कहां है। अगर धर्म की सुगंध नहीं है, तो हमने शायद कागज के फूलों को असली फूल समझ लिया है। शायद हमने मकानों को मंदिर समझ लिया है। और अपने हाथ की बनाई हुई मूर्तियों को परमात्मा समझ लिया है। नहीं तो जीवन कुछ से कुछ होता, कुछ और होता, कुछ और बात होती।
तो मैं यह निवेदन करना चाहता हूं, मनुष्य जिस मंदिर को बनाएगा, वह मंदिर परमात्मा का नहीं हो सकता। हां, अगर मनुष्य अपने को मिटा ले, तो उसका हृदय परमात्मा का मंदिर जरूर बन जाता है। लेकिन कोई मिट्टी की दीवाल, कोई ईंटें परमात्मा के मंदिर को नहीं बनातीं, हृदय जरूर परमात्मा का मंदिर बना सकता है। और वही हृदय परमात्मा का मंदिर बना सकता है जो अपने को मिटा ले।
रवींद्रनाथ एक रात एक बजरे में थे, एक नाव पर थे। पूर्णिमा की रात थी।
एक मोमबत्ती को जला कर एक किताब को पढ़ते थे। रात आधी हो गई और तब थक गए वे, उन्होंने किताब बंद की, मोमबत्ती फूंक कर बुझाई, बुझाते से ही हैरान हो गए। उठ कर खड़े हो गए और नाचने लगे। क्या हो गया उनको? मोमबत्ती बुझाई, बुझते ही खड़े हो गए, नाचने लगे, बाहर निकल आए बजरे के, और आकाश की तरफ हाथ जोड़ कर क्षमा मांगने लगे। उनका एक मित्र भी था, उसने कहाः यह क्या करते हैं? पागल हो गए हैं! उन्होंने कहाः पागल नहीं हुआ। आज एक अदभुत सत्य का मुझे बोध हुआ, जिसे मैं आज तक नहीं जाना था। छोटी सी मोमबत्ती को जला रहा

था, तो मोमबत्ती का टिमटिमाता पीला सा प्रकाश भरा हुआ था, धुआं भर गया था और चांद भीतर नहीं आ रहा था। मोमबत्ती फूंक कर बुझाई कि बजरे के द्वार से, खिड़की से, रंध्र-रंध्र से चांद की अदभुत रोशनी भीतर भर गई। सारा बजरा आलोकित हो गया। तो रवींद्रनाथ ने कहाः आज मुझे एक अदभुत, अदभुत सत्य का दर्शन हुआ है।
एक छोटी सी मोमबत्ती मेरी जलाई हुई, धुआं फेंकती थी, पीला प्रकाश फेंकती थी। और मेरी जलाई हुई छोटी सी मोमबत्ती परमात्मा के जलाए हुए चांद को बाहर रोके रही, भीतर न आने दिया। द्वार चांद खड़ा था, खिड़की पर चांद खड़ा था, रंध्र-रंध्र पर चांद खड़ा था, भीतर नहीं आ सका, बाहर ठहरा रहा। एक छोटी सी मोमबत्ती ने बाधा दे दी। और मैंने मोमबत्ती बुझाई और चांद भीतर भर गया। और सारा अदभुत आलोक सारे बजरे को छा लिया, सारे बजरे को डूबा दिया। तो आज मैंने जाना कि जब तक मेरे भीतर भी मेरे अहंकार की छोटी सी मोमबत्ती जलती है तब तक परमात्मा का प्रकाश भीतर नहीं जा सकेगा। तो जब मैं अपने भीतर की मोमबत्ती को बुझा दूंगा, उसी दिन उसका प्रकाश भीतर आ जाएगा। वह तो द्वार-द्वार पर खड़ा प्रतीक्षा करता है। वह तो जगह-जगह प्रतीक्षा करता है। लेकिन जब तक हम अपने पर, अपनी मोमबत्ती पर, अपने अहंकार पर ही पकड़े हुए ठहरे रहते हैं, तब तक, तब तक उसे आने का कोई कारण नहीं है।
तो यह जो मनुष्य जो बनाता है उससे नहीं धर्म का संबंध, क्योंकि मनुष्य
जो भी बनाएगा उसका हर बनाया हुआ काम उसके अहंकार को और मजबूत कर देता है। एक मंदिर बना कर देखें, फिर आपका अहंकार और मजबूत हो जाता है कि मैंने मंदिर बनाया। फिर आप मंदिर के ऊपर एक तख्ती लगा कर अपना नाप टांग देते हैं कि मैंने मंदिर बनाया। और यह पत्थर लगा रहे हजारों तक ताकि लोग जानें कि किसने यह मंदिर बनाया था। कभी छोटा सा धार्मिक काम करके देखें, फिर देखें रीढ़ कैसी ऊंची हो जाती है, अहंकार कैसा मजबूत हो जाता है कि मैंने यह किया। मैंने यज्ञ किया, मैंने मंदिर बनाए, मैंने इतना-इतना धर्म का कार्य किया, ये हमारे अहंकार को और मजबूत कर जाते हैं। इससे कोई परमात्मा के निकट नहीं पहुंचता, यह मैं मिट जाए, टूट जाए। मनुष्य की प्रतिमा तोड़नी है, वह टूट जाए, तो कोई और, कोई और उतरता है और जीवन को बदल देता है।
इस संबंध में मैं अंतिम दिन बात करूंगा शून्यता के संबंध में। तब इस
पर पूरी चर्चा आपसे कर सकूंगा कि मनुष्य के भीतर का अहंकार कैसे टूट जाए। ये हमारी पूजाएं, हमारी प्रार्थनाएं भी कोई अर्थ नहीं रखती हैं। क्यों?
एक छोटी सी कहानी से आपको कहूं।
पूछा है कि हम पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं, तो क्या यह सब व्यर्थ है?
समुद्र में एक नाव थी। बहुत यात्री उस नाव पर थे। एक फकीर भी था। नाव किनारे के करीब-करीब पहुंचने को थी। आशा थी कि सुबह होते-होते नाव किनारे से लग जाएगी। लेकिन आधी रात भयंकर तूफान आ गया, और नाव डगमगाने लगी और पानी के थपेड़े भीतर पानी फेंकने लगे और हवाएं पागल हो गईं और रास्ता भटक गया और मल्लाह चिंतित हो गए और आधी रात को सारे यात्री जग गए, हाथ जोड़ कर, घुटने टेक कर आकाश की तरफ प्रार्थना करने लगे कि हे परमात्मा! हमें बचाओ। और उस प्रार्थनाओं में कहने लगे कि अगर हम बच गए तो इतना दान करेंगे, अगर बच गए तो तीर्थ हो आएंगे, अगर बच गए तो ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे। भगवान को आश्वासन भी देने लगे। मनुष्य की भाषा में कहें तो रिश्वत देने लगे। और धर्म की भाषा में कहें तो भगवान के सामने प्रतिज्ञाएं और व्रत लेने लगे कि हम ऐसा करेंगे, हम वैसा करेंगे, मगर हमें बचाओ।
वह फकीर था, सारे लोगों ने उससे कहा कि तुम भी प्रार्थना करो, तुम्हारी प्रार्थना वह ज्यादा सुन लेगा। क्योंकि तुम फकीर हो, निकट का तुम्हारा संबंध है, तुम्हारी बात जल्दी सुन लेगा। लेकिन वह फकीर अजीब था, वह आंखें बंद किए बैठा रहा, और प्रार्थना में सम्मिलित नहीं हुआ। तो वे सब बहुत नाराज हो गए और उसने कहा कि तुम कैसे दुष्ट आदमी हो, तुम भगवान के निकट रिश्तेदार मालूम होते हो, जीवन भर के फकीर हो, तुम कहोगे तो जल्दी मान

लेगा। मिनिस्टर भी उसका कोई रिश्तेदार कहता है तो जल्दी मान लेता है, भगवान भी तुम्हारी जल्दी मान लेगा। लेकिन तुम हो कि तुम चुप बैठे हो।
वह फकीर लेकिन चुप बैठा रहा। सुबह होने के करीब थी, बजरा डांवाडोल हो रहा था, डूबने के करीब था। वे सारे लोग आंसू बहा रहे हैं, प्रार्थना कर रहे हैं। और तभी वह फकीर चिल्लाया कि ठहर जाओ, देखो, वायदा मत कर देना, वचन मत दे देना, प्रॉमिस मत कर देना भगवान से, किनारा करीब आ गया है। वे तो सब बेचारे प्रार्थना में थे, आंख उठा कर देखा, किनारा करीब था, प्रार्थना वहीं भूल गए, अपना सामान बांधने लगे। उस फकीर ने कहा कि देखी तुम्हारी प्रार्थना, किनारा करीब आ गया तो एक भी घुटने टेके न रहा, एक भी हाथ जोड़े नहीं रहा, सब उठाए अपना सामान बांधने लगे, और भूल गए प्रार्थना और भगवान दोनों। हमारी सब प्रार्थनाएं भय से पैदा होती हैं, या प्रलोभन से पैदा होती हैं। और भय और प्रलोभन जहां है वहां प्रार्थना असंभव है। क्योंकि जो प्रार्थना भय से पैदा होती है वह भय के हट जाने पर समाप्त हो जाएगी। और जो प्रार्थना किसी चीज को पाने के लिए है वह प्रार्थना ही नहीं है।
कभी ऐसी कोई प्रार्थना की है जिसमें भय और प्रलोभन न हो? तो आप कहेंगे, फिर हम करेंगे कि क्यों? जब कोई भय ही न हो, कोई प्रलोभन ही न हो, तो हम प्रार्थना क्यों करेंगे? तो फिर मैं आपसे कहूंगा, आप प्रार्थना को अभी जानते भी नहीं है। ये जितनी हमारी प्रार्थनाएं हो रही हैं सब भय और प्रलोभन पर खड़ी हैं। या तो किसी भय से छुटकारा चाहिए या कोई प्रलोभन है, कोई नौकरी चाहिए, किसी को स्वास्थ्य चाहिए, किसी को मुकदमा। और अगर स्वास्थ्य और मुकदमे से मन ऊब गया है तो स्वर्ग चाहिए, मोक्ष चाहिए, भगवान के दर्शन चाहिए, भगवान के चरणों में निवास चाहिए, इस तरह की पच्चीस बातें, लेकिन चाहिए।
क्या आपको पता है जो प्रेम कुछ मांगता है वह प्रेम झूठा है। लेकिन हमारी सब प्रार्थनाएं कुछ मांगती हैं।
कोई प्रार्थना जो मांगती है सच्ची नहीं हो सकती है। फिर कौन सी प्रार्थना सच्ची होगी? क्या आपको पता है जो प्रेम मांगता है वह झूठा होता है, फिर कौन सा प्रेम सच्चा है? जो प्रेम देता है वह सच्चा होता है। जो प्रार्थना देती है वह भी सच्ची होती है। लेकिन हम तो देने को जानते नहीं, हम तो मंदिर में मांगने जाते हैं, हम देने को जाते नहीं।
धर्म का संबंध मांगने से नहीं है, धर्म का संबंध देने से है।
एक सुबह एक भिखारी अपने घर के बाहर निकला। निकलते वक्त उसने अपनी झोली में चावल के थोड़े से दाने डाल लिए। जैसा कि सभी समझदार भिखारी हमेशा करते हैं। क्योंकि जिसके द्वार पर भी भीख मांगनी है अगर उसको पता चल जाए कि इसको किसी और ने भी भीख दी है, तो उसको भी देने में आसानी होती है। दो कारणों से। एक तो उसे यह ख्याल नहीं पैदा होता कि यह मुझको ही मूर्ख बना रहा है किसी और को भी बना चुका है। दूसरा यह कोई साधारण भिखारी नहीं है कोई विशिष्ट भिखारी है, इसको दान मिलता है। यानी मैं किसी ऐरे-गैरे आदमी को नहीं दे रहा हूं जिसको मिलता है उसको ही दे रहा हूं।
तो उस भिखारी ने भी अपने घर से निकलते वक्त अपनी झोली में चावल के दाने डाल लिए और वह दरवाजे से बाहर निकला। सुबह होने के करीब है, वह गांव में भिक्षा मांगने जाता है।
रास्ते पर आया था कि उसे दिखाई पड़ा, दूर से राजा का रथ आ रहा है। उसने सोचा कि यह तो बड़ी सौभाग्य की घड़ी है, ऐसा आज तक न हुआ था। और राजा के घर दरवाजे से संतरी वापस लौटा देते थे, कभी भीतर घुसने का मौका नहीं आया। राजा भी उनको भीतर आने देता है जिनसे कुछ मिलने की आशा हो। जिनको देना पड़े उनको कौन भीतर आने देता है। तो उस भिखारी को तो कभी भीतर घुसने नहीं दिया गया था। आज मौका, रास्ते पर ही राजा मिल गया था। तो उसने सोचा आज तो झोली फैला कर सामने खड़ा हो जाऊंगा, और आज तो मांग ही लूंगा और हमेशा की मुराद पूरी हो जाएगी। वह अपने मन में विचार करने लगा, क्या मांगूं, क्या न मांगूं। और सोचता ही था कि रथ आकर सामने खड़ा हो गया है।
राजा नीचे उतरा और भिखारी घबड़ा कर रह गया, उसकी कल्पना में भी न था जो
हो गया। राजा ने अपना कपड़ा फैला दिया और कहा कि मुझे कुछ दो। तो भिखारी ने

सोचा भी न था कि यह राजा और अपना वस्त्र फैला देगा। और कभी जीवन में कल्पना भी न की थी कि मुझसे भी कोई मांग लेगा। वह अपनी झोली में हाथ डालता था और बाहर निकल लेता था। हिम्मत न पड़ती थी कि एक मुट्ठी चावल के दाने दे दूं। देने की कोई आदत न थी, मांगने की ही आदत थी। दिया कभी था ही नहीं, हमेशा मांगा था। कल्पना में भी नहीं सोचा था कि कभी देना पड़ेगा। ऐसा पहाड़ भी सिर पर गिरेगा कि देना पड़े। तो मुट्ठी बांधता था छोड़ देता था। राजा बोला, जल्दी करो, जो भी देना हो दे दो मैं जाऊं। और आज तो राजा ने कहा कि मैं यही कल्पना करके निकला था कि जो भी मुझे पहले मिल जाएगा उससे कुछ मांग लूंगा। बड़ा गड़बड़ राजा था। आखिर बामुश्किल, बामुश्किल उसने एक, एक दाने को निकाला। एक दाना चावल का! और राजा की झोली में डाल दिया। राजा बैठा और चल पड़ा, रथ पर की धूल उड़ती रह गई, और उसके मन में पश्चात्ताप कि एक दाना व्यर्थ ही चला गया। मांगना था वह तो मांग ही नहीं पाया और एक दाना और व्यर्थ चला गया।
उस सांझ दिन भर उसने भीख मांगी, लेकिन मन दुखी रहा, एक दाना खो दिया था। इतनी भिक्षा कभी न मिली थी, आज पूरी झोली भर गई थी, लेकिन चित्त दुखी था, एक दाना कम था। घर लौटा, पत्नी पूछा, तो कहा, इतने उदास, आज तो झोली पूरी भरी है, इतनी तो कभी न भरी थी। उसने कहाः झोली पूरी भरी दिखती है, थोड़ी खाली है, एक दाना कम है, एक दाना आज देना पड़ा है। और तू कल्पना भी नहीं कर सकती कि देना कितना कष्टप्रद हुआ होगा उसके लिए जो हमेशा मांगता रहा और पाता रहा। मेरे प्राण ही खिसक गए थे, मेरी श्वास ठहर गई थी। लेकिन देना पड़ा, मजबूरी में उलझ गया था। उसने अपनी झोली उलटाई, अब तक तो दुखी था, फिर छाती पीट कर रोने लगा और आंसू उसकी आंखों से झर-झर टपकने लगे। झोली उलटा कर देखा, और सब दाने तो दाने थे एक चावल का दाना सोने का हो गया था। और तब वह छाती पीटने लगा और रोने लगा कि मैं कैसा पागल हूं, मैंने सारी झोली राजा को क्यों न उलटा दी, तो आज सारे दाने सोने के हो जाते। लेकिन अब तो अवसर निकल गया था। और राजा रथ पर मिलता नहीं सड़क पर।
यह तो कहानी है, लेकिन मैं आपसे कहूं, केवल वे ही जीवन के दाने सोने के
हो जाते हैं जो हम देते हैं। और जो हम बचा लेते हैं वे मिट्टी के सिद्ध हो जाते हैं। मरते वक्त जब हर आदमी अपनी झोली उलटा कर देखता है तो पाता है थोड़े से दाने सोने के हो गए हैं जो उसने दिए थे और बाकी सब दाने मिट्टी के हैं जो उसने पाए थे।
प्रार्थना का अर्थ हैः ऐसा जीवन जो देने का जीवन है, मांगने का जीवन नहीं। प्रार्थना का अर्थ किसी मंदिर में बैठ कर हाथ जोड़ कर कुछ बातें करना नहीं है। प्रार्थना का अर्थ हैः समग्र जीवन ऐसा हो जो देने का जीवन हो, पाने का जीवन नहीं। जिसके जीवन में जितना दान है समग्रभूत अपने प्राणों का, अपनी शक्तियों का, अपनी ऊर्जाओं का, अपने प्रेम का, अपनी दया का, उसका जीवन उतना ही प्रार्थनापूर्ण है। प्रार्थना कोई प्रेयर नहीं है कि बैठ कर हमने स्तुति कर ली। प्रार्थना समग्र जीवन का रूपांतरण है।
अभी हम मांगते हैं, सब कुछ मांगते हैं, मांगते हैं, मांगते हैं, मांगते हैं, मांगने वाला मन कभी प्रार्थना नहीं कर सकता। देना, देना ही प्रार्थना है। प्रार्थना कोई शब्दों की स्तुति नहीं है, पूरे जीवन का देना है। तो देने की जिसके जीवन में दृष्टि होती है। हमारे जीवन में तो मांगना ही मांगना होता है। भिखमंगा मांगता है तो यह मत सोचना कि भिखमंगा मांगता है, हम सब भी भिखमंगे हैं। कोई छोटा भिखमंगा है, कोई बड़ा भिखमंगा है। हम सब भिखारी हैं। जिनको हम महामहिम कहते हैं और जो बहुत-बहुत बड़े-बड़े हैं वे भी मांगते ही रहते हैं।
एक फकीर था, फरीद। वह अकबर के समय में हुआ। उसके गांव के मित्रों ने उससे कहा कि मित्र, अकबर तुम्हें बहुत आदर करता है, तुम जाओ और उससे कहो कि हमारे गांव में एक मदरसा खोल दे, एक स्कूल खोल दे। फरीद गया, सोचा जल्दी जाऊं, सुबह-सुबह अकबर का मन अच्छा होगा।
भिखमंगे सभी सुबह-सुबह आते हैं, सांझ कोई भिखमंगा नहीं आता। भिखमंगे बहुत दिनों से मनुष्य के मन को समझते हैं कि सुबह-सुबह थोड़ा ताजा रहता है, सांझ थक जाता है। सुबह मिल जाए तो कुछ मिल जाए, सांझ तो कोई देगा नहीं।

इसलिए फरीद भी सुबह-सुबह पहुंच गया अकबर के वहां। अकबर नमाज में था।
वह सुबह की नमाज पढ़ रहा था, तो फरीद जाकर पीछे खड़ा हो गया। सोचा कि अच्छे मौके पर आ गया हूं। नमाज से उठेगा तो शायद देने के लिए पिघल जाए। वह खड़ा रहा पीछे। अकबर को पता नहीं कोई पीछे खड़ा है। अकबर हाथ जोड़ कर जब नमाज पूरी किया, प्रार्थना पूरी किया, तो उसने कहाः हे भगवान! हे परम पिता! मेरे राज्य को और बढ़ा! मेरे धन को और बड़ा कर! मेरी सीमाओं को और दूर ले जा! मेरी यश की पताका और ऊंची उठा! इसने भगवान से कहा।
फरीद ने सुना, वह चुपचाप वापस लौट पड़ा। अकबर उठा उसने देखा कि फरीद लौटता है, उसने रोका और पूछा कि आए और चले बिना कुछ कहे? फरीद ने कहा कि मैंने सोचा कि मैं एक सम्राट के पास जाता हूं, यहां मैंने पाया कि यहां भी एक भिखारी है। मैं तो सोच कर आया था कि एक सम्राट के पास जाता हूं, लेकिन तुम्हारी प्रार्थना सुनी और पाया कि तुम भी एक भिखारी हो। तो अब मैं वापस लौट जाता हूं, एक भिखारी से मांगना तो शोभा नहीं देता। और अगर अब मांगना ही होगा तो हम भी उसी मांग लेंगे जिससे तुम मांगते थे, अब तुमको बीच में क्यों लें, अब अकारण तुमको क्यों परेशान करें।
फरीद लौट गया। उसने अकबर से नहीं मांगा। फरीद की आत्मकथा में बाद में लिखा है कि वह लौट गया उसने नहीं मांगा। क्योंकि उसने कहा एक भिखारी से क्या मांगना। तो हम सब भिखारी हैं। हम सब मांग रहे हैं। और जो मांगने वाला है वह प्रार्थना करेगा तो प्रार्थना में भी मांगना ही होगा, भीख ही होगी। परमात्मा के पास भिखारी होकर कोई कभी नहीं पहुंचा है। परमात्मा के पास सम्राट होकर पहुंचना पड़ता है। जो देता है वह पहुंचता है, जो मांगता है वह कभी नहीं पहुंचता।
इसलिए मैं आपकी प्रार्थनाओं की समर्थन में नहीं हूं। लेकिन हां, एक प्रेम का जीवन हो सकता है, देने का जीवन हो सकता है, वह जीवन प्रार्थना है। उसमें कोई परमात्मा नहीं होता, सिर्फ देना होता है, सिर्फ दान होता है, सिर्फ प्रेम होता है। और धीरे-धीरे देना और दान और प्रेम उस जगह पहुंच जाता है कि हम अपने को समग्रीभूत खो देते हैं, सब भांति दे डालते हैं। उसी स्थिति में जब कि हम सब भांति दे चुके होते हैं उसकी उपलब्धि होती है जो सब कुछ है। तो इसलिए इन प्रार्थनाओं का कोई मूल्य नहीं, कोई अर्थ नहीं।

एक और अंतिम प्रश्न, फिर और जो प्रश्न बच गए हैं वह मैं कल चर्चा करूंगा।
एक मित्र ने पूछा है कि हम जो कुछ भी करते हैं सभी में कामना रहती है, वासना रहती है, इच्छा रहती है। कोई न कोई कामना, कोई न कोई इच्छा, कोई न कोई वासना, कोई डिजायर, हम जो भी करते हैं, कोई पाने की आकांक्षा रहती है। और आप कहते हैं, पाने की आकांक्षा न हो, तब तो फिर हम कुछ करेंगे ही नहीं।

नहीं, हम एक ही तरह के काम को जानते हैं। एक तरह का और भी काम होता है जिसका हमें कोई भी पता नहीं। हम एक ही तरह के काम को जानते हैं जिसमें कुछ मांगना, कोई इच्छा, कोई लक्ष्य, कोई फल की प्राप्ति। हम एक तरह का और भी काम होता है उसे हम जानते ही नहीं। और बड़े आश्चर्य की बात यह है कि वही काम, वह दूसरी तरह का काम ही जीवन में धर्म को और सत्य को और परमात्मा को लाता है। एक छोटी से घटना से बात कहूं।
अकबर ने एक रात्रि तानसेन को विदा करते वक्त कहाः तुम्हारे गीत सुनता हूं, तुम्हारा वाद्य सुनता हूं, तो मेरे प्राण इस भांति सम्मोहित हो जाते हैं, और मुझे ऐसा लगने लगता है कि तुमसे बेहतर तो कभी किसी ने भी नहीं बजाया होगा औरे तुमसे बेहतर कभी कोई बजा भी नहीं सकेगा। संगीत में तुमने जो जाना है और जो पाया है शायद कभी किसी ने नहीं जाना और कभी कोई नहीं जान सकेगा। ऐसा मेरे मन में भाव निरंतर उठता है। लेकिन आज मुझे एक नया प्रश्न आ गया है वह मैं तुमसे पूछता हूं और वह यह कि जब मैं तुम्हें सुनता था तो मुझे अचानक यह ख्याल आया, तुमने शायद किसी से सीखा हो, तुम्हारा कोई गुरु हो, और हो सकता है वह तुमसे भी बेहतर बजाता हो और तुमसे भी बेहतर, तुमसे भी गहरा जाता हो, हो सकता है। तो तुम्हारा गुरु कोई है कोई जीवित? यदि हो तो

मैं उसे सुनना चाहूंगा। मुझे विश्वास नहीं पड़ता कि तुमसे आगे कोई हो सकता है। लेकिन फिर भी मैं सुनना चाहूंगा। मेरा कुतूहल जग गया।
तानसेन ने कहा कि बड़ी कठिन बात है। गुरु तो मेरे हैं, लेकिन उनको कहा नहीं जा सकता कि वे गाएं, हां, कभी-कभी वे गाते हैं तब सुना जा सकता है। कभी- कभी वे बजाते हैं तब सुना जा सकता है, लेकिन कहा नहीं जा सकता कि वे बजाएं। क्योंकि उनकी कोई आकांक्षा नहीं है जिसके लिए उनको प्रलोभन दिया जा सके कि इसलिए बजाओ। उनकी कोई यश की कामना नहीं है, कोई इच्छा नहीं है, कोई पाने का भाव नहीं है, हां, कभी-कभी अपनी मौज में वे बजाते हैं तब सुना जा सकता है। अकबर ने कहा कि मैं सुनूंगा। तानसेन कहाः चोरी से सुनना पड़ेगा, क्योंकि सामने चले जाएं तो हो सकता है वे बंद कर दें और चीज टूट जाए।
तो आधी रात को अकबर और तानसेन गए। तानसेन का गुरु एक फकीर था, हरिदास,
वह यमुना के किनारे रहता। एक झोपड़े में। कोई तीन बजे सुबह उठ कर वह अपनी मौज में कुछ गाता और बजाता। दोनों ने झोपड़े के बाहर चोरी से बैठ कर सुना। शायद ही कभी किसी सम्राट ने चोरी से बैठ कर सुना हो।
अकबर रोने लगा। लौटते में तानसेन से बोला नहीं। महल पहुंच कर उसने तानसेन से कहा कि मैं तो सोचता था तुम्हारा कोई मुकाबला नहीं, अब मैं क्या सोचूं, तुम्हारे गुरु के सामने तो तुम ना-कुछ हो। लेकिन इतना फर्क क्यों है? तुम इतना, इतना अलौकिक क्यों नहीं बजा पाते हो?
तानसेन ने कहाः सीधी सी, सरल सी बात है, मैं इसलिए बजाता हूं कि मुझे कुछ मिल जाए। और मेरा गुरु इसलिए बजाता है कि उसे कुछ मिल गया है। उसे कुछ मिल गया है इसलिए बजाता है और मुझे कुछ मिल जाए इसलिए बजाता हूं। मेरा बजाना एक भिखमंगे का बजाना है, मेरे गुरु का बजाना एक सम्राट का बजाना है। आनंद मिल गया है और आनंद से उसका संगीत निकल रहा है। और मेरा संगीत तो एक साधन है कि मुझे रुपये मिल जाएं तो शायद आनंद मिले।
दो तरह का जीवन है, एक आनंद को खोज लेने से जो जीवन विकसित होता है वह,
उस जीवन में कुछ पाने की आकांक्षा नहीं होती। वह सारा जीवन प्रार्थना बन जाता है। वह सारा जीवन सहज ही निष्काम बन जाता है। वह सारा जीवन सहज ही किसी तरह की फलाकांक्षा से मुक्त हो जाता है। और एक जीवन है दुख का जीवन जिसमें सब कुछ पाने की इच्छा होती है, आकांक्षा होती है।
और स्मरण रखिए, दुख से जो कृत्य निकलता है वह आनंद कभी न ला सकेगा। क्योंकि जहां से जो चीज निकलती है वही मिल जाती है। मिट्टी से जो चीज पैदा होती वह मिट्टी में गिर जाती है। जो शुरुआत है वही अंत है। तो अगर हमारा चित्त दुखी है और हम कोई काम कर रहे हैं कि इससे सुख मिल जाए, तो गलती में हैं आप। दुखी चित्त से जो कृत्य निकलेगा उसका अंत दुख ही होगा सुख नहीं हो सकता। दुख के बीज से दुख के फल लगते हैं। जो कृत्य आनंद की भूमि से निकलता है, वह आनंद लाता है। क्योंकि आनंद से निकला हुआ बीच आनंद के फलों को पैदा करता है।
तो मैं आपसे नहीं कहता कि आप निष्काम हो जाएं, वासना छोड़ दें, यह तो कभी कोई छोड़ ही नहीं सकता। मैं आपसे नहीं कहता आप फलाकांक्षा छोड़ दें, यह कभी कोई छोड़ ही नहीं सकता। यह तो मैं आपसे कहता नहीं। मैं तो आपसे यह कहता हूं, आनंदित हो जाएं। और आनंद को पाने का सूत्र है, मार्ग है। और जिस दिन आप आनंद को पा लेंगे, पाएंगे कि गई आकांक्षा, गई वासना। आनंद से भरी हुई आत्मा में कोई वासना नहीं होती, दुख से भरी हुई आत्मा में होती है। तो जिसका चित्त दुख से भरा है, अगर वह वासना-वासना छोड़ने की बातें करता हो, तो पागल है, नासमझ है, वह कभी छोड़ नहीं सकेगा। दुखी चित्त वासना छोड़ ही नहीं सकता। दुखी चित्त से तो वासना पैदा होती है। हां, हम दुखी चित्त को छोड़ सकते हैं। और दुखी चित्त छूट जाए तो उसके साथ उसकी सारी वासना विलीन हो जाती है। और दुखी चित्त छोड़ना अत्यंत सरल बात है। क्योंकि दुखी चित्त हमने बनाया है इसलिए है। अगर हम न बनाएं तो दुखी चित्त विलीन हो जाएगा और तब जो शेष रह जाता है वह आनंद है। आनंद हमारा स्वभाव है, हमारा स्वरूप, उसकी बात मैं कल करूंगा, परसों करूंगा कि वह हमारा स्वभाव, स्वरूप कैसे उघड़ जाए। उसे कहीं से पाना नहीं है वह अपने भीतर मौजूद है।

मेरी इन बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सत्य की प्यास
तीसरा प्रवचन

सरलता

मेरे प्रिय आत्मन्!
सत्य की खोज में या परमात्मा की खोज में स्वतंत्रता पहली शर्त है, इस संबंध में कल मैंने आपसे थोड़ी बातें कहीं। लेकिन स्वतंत्रता, स्वतंत्रता चिल्लाने से कुछ भी हल नहीं होता है। और सत्य की खोज में चले हुए लोग स्वतंत्रता की बातें करते हुए भी प्रतीत होते हों तो भी अपने ही हाथों से अपने ऊपर बंधन निर्मित करते चले जाते हैं।
एक तो ऐसी गुलामी होती है जो दूसरे हमारे ऊपर थोप देते हैं; एक ऐसी भी गुलामी होती है जिसे हम खुद अपने ऊपर थोप लेते हैं। वह गुलामी बहुत खतरनाक नहीं होती जो दूसरे हमारे ऊपर थोप दें; खतरनाक तो वही गुलामी होती है जिसे हम अपने हाथों से निर्मित करते हैं। क्योंकि जिसे हम खुद बनाते हैं उसे मिटाने में डर लगने लगता है, मिटाने में मोह होने लगता है और भय लगने लगता है।
जो परतंत्रता आत्मिक रूप से मनुष्य के ऊपर है वह खुद उसे निर्मित करता है। और इस बात को बिना जाने यदि हम स्वतंत्र होने की कोई तलाश करते हों, इस बात को बिना जाने कि परतंत्रता की कड़ियां खुद हमारी बनाई हुई हैं, तो बड़ी कठिनाई हो जाती है।
एक छोटी सी कहानी से कल की बात को आज से जोड़ना चाहूंगा और फिर आज की बात आपसे कहूंगा।
रोम में एक बहुत अदभुत लोहार हुआ, उस लोहार की प्रसिद्धि उसके देश के बाहर भी दूर-दूर तक फैल गई थी। वह जो भी चीजें बनाता था वे सच में ही इतनी कुशलता के प्रमाण थीं कि उसकी ख्याति, उसका नाम दूर-दूर तक फैल जाए इसमें कोई आश्चर्य न था।
ख्याति के साथ-साथ ही धन भी आना शुरू हुआ। रोम में बड़े-बड़े धनपतियों
के मुकाबले भी उसके पास ज्यादा धन इकट्ठा हो गया। दूर-दूर के बाजारों में उसकी चीजें बिकने पहुंचने लगीं। और दूर-दूर के राजाओं से भी चीजें बनाने के लिए उसके पास आमंत्रण आने लगे। और तभी जब वह अपनी ख्याति की और धन-कमाई की चरम सीमा पर था रोम पर आक्रमण हुआ। रोम के सौ बड़े नागरिक शत्रुओं ने पकड़ लिए और उन सबके हाथों में जंजीरें और पैरों में बेड़ियां डाल कर पहाड़ी कंदराओं में उन्हें फिंकवा दिया। उन सौ बड़े नागरिकों में वह लोहार भी पकड़ा गया। सौ नागरिकों में से निन्यानबे तो नागरिक रोते और चिल्लाते थे, लेकिन वह लोहार शांत था। और न तो उसे दुख मालूम हो रहा था और न पीड़ा। उसके निकट के मित्रों ने पूछा कि तुम परेशान नहीं हो?
उसने कहाः मैं जीवन भर का लोहार हूं, मेरी कुशलता भी तुम जानते हो; और मैं भलीभांति जानता हूं कि जंजीरें कितनी ही मजबूत क्यों न हों लेकिन हर जंजीर की कड़ी जहां से जुड़ती है वहां कमजोर होती है, यह मैं भलीभांति जानता हूं। जंजीरों में एक कड़ी कमजोर होती है इसे मैं जानता हूं और उसे मैं पहचान लूंगा। और उस कमजोर कड़ी को भी तोड़ने में मैं जरूर समर्थ हो जाऊंगा, इसलिए मैं निश्चिंत हूं।
वे सौ नागरिक खाइयों और गड्ढों में फेंक दिए गए, उस लोहार को भी फेंक दिया गया। जब तक उसे नहीं फेंका गया था वह निश्चिंत था। जैसे ही वह गड्ढे में फेंक दिया गया, उसने सबसे पहला काम किया, अपनी कड़ियों को देखा, जरूर उनमें कोई कमजोर कड़ी होगी और उसे तोड़ कर उसे वह मुक्त हो सकेगा। लेकिन कड़ियों को देखते ही उसकी आंखों में आंसू भर आए और वह छाती पीट कर रोने लगा। कड़ियों में उसने क्या देखा ऐसा जिससे वह रो उठा?
उसकी आदत थी कि वह जो भी चीज बनाता था उसके किनारे पर, कोने पर अपने हस्ताक्षर कर देता था, अपने दस्तखत कर देता था। जब उसने जंजीर उठा कर देखी, तो पाया उस जंजीर पर उसके हस्ताक्षर थे, वह उसकी ही बनाई हुई थी। और तब वह रोने लगा। दो कारणों से। एक तो इस बात की उसे कल्पना भी न थी, कभी स्वप्न भी न आया था कि अपनी ही हाथ की बनाई हुई कड़ियों में और जंजीरों में किसी दिन

बंध होकर किसी गड्ढे में मरेगा। और दूसरा इस बात को जान कर कि उस कड़ी पर उसके हस्ताक्षर थे। अब वह भलीभांति जानता था कि कड़ी तोड़ना असंभव है, क्योंकि कमजोर चीज बनाने की उसकी आदत ही नहीं थी। उसमें कोई कमजोर कड़ी नहीं थी। उसने हमेशा मजबूत चीजें बनाई थीं। इसी के लिए उसकी ख्याति थी, इसी के लिए वह प्रसिद्ध भी था। अब वह जानता था उसमें कोई कमजोर कड़ी नहीं है। और तब रोना स्वाभाविक था। अपने ही हाथ से बनाई हुई कड़ियों में मरते वक्त कौन नहीं रोने लगेगा?
लेकिन जाने दें उस लोहार को, उसकी कथा से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है। जहां तक मैं देख पाता हूं, हर आदमी ऐसा ही लोहार है। जो जिंदगी भर ऐसी कड़ियां बनाता है जिनमें मौत के वक्त पाता है कि खुद ही उलझ गया। और अपने हस्ताक्षर मिलते हैं उसे हर कड़ी पर। और तोड़ना कठिन होता है, क्योंकि कमजोर चीज बनाने की किसी की भी कोई आदत नहीं है। हर आदमी करीब-करीब इसी हालत में है। वे कौन सी कड़ियां हैं जो हम बनाते हैं? और जिनकी गुलामी में हम उलझ जाते हैं? और हमें पता भी नहीं चलता कि हम अपने ही हाथ से अपने फंदे निर्मित करते हैं। हम तो यही सोच कर उन्हें निर्मित करते हैं कि शायद हम जीवन के आनंद के लिए, शायद हम जीवन को आलोकित करने के लिए, शायद हम कोई परम स्वतंत्रता और मोक्ष को पाने के लिए उनका निर्माण कर रहे हैं। लेकिन हमें पता नहीं कि मनुष्य इतने दुख और पीड़ा में, इतनी बेचैनी और अशांति में, इतने तनाव में, इतनी चिंता में, इतने संताप में, किसी और के कारण नहीं होता है अपने ही कारण होता है। और हमें यह भी पता नहीं कि हम जिस चीज को बचने का उपाय समझते हैं वही डूबने का सहारा बन जाती है। और हम जिस दौड़ को सोचते हैं कि हम बचने कि लिए दौड़ रहे हैं, आखिर में हम पाते हैं कि वही हमें फंदे में ले गई।
दमिश्क में एक राजा ने एक रात एक सपना देखा। उसने सपना देखा कि रात सोया है, नींद में, सपने में कोई काली छाया उसके पीछे आकर खड़ी हो गई। उसके कंधे पर उस काली छाया ने हाथ रखा, उस राजा ने पूछाः तुम कौन हो? उसके प्राण घबड़ा गए। उस छाया ने कहाः मैं, मैं हूं तुम्हारी मृत्यु। और कल सांझ सूरज डूबने के पहले ठीक जगह पर ठीक से तैयार होकर मिल जाना। देखो, भूल-चूक न हो जाए। नींद टूट गई। किसकी नींद न टूट जाएगी। आधी रात थी, महल में खतरे के घंटे बजा दिए गए। सारे दरबारी, वजीर भागे हुई इकट्ठे हो गए। राज्य का ज्योतिषी आ गया। और राजा ने कहाः मैंने एक खतरनाक सपना देखा है। देखा है कि मौत कंधे पर हाथ रखे है और कहती है सूरज डूबने के पहले ठीक जगह ठीक से तैयार होकर मिल जाना, देखो देर-अबेर न हो जाए। क्या अर्थ है इस सपने का? उसके विद्वान विचार करने लगे। थोड़ी देर में उन्होंने कहा कि यदि हम बहुत विचार में पड़े, तो एक सूरज क्या, कई सूरज डूब जाएंगे और हम किसी नतीजे पर न पहुंचेंगे। क्योंकि विद्वान हजारों साल से विचार कर रहे हैं और किसी नतीजे पर नहीं पहुंचे। इसलिए हमसे मत पूछो, क्योंकि सांझ बहुत करीब है, थोड़ी ही देर में सुबह होगी और फिर सांझ हो जाएगी। और विचारकों से मत पूछो, क्योंकि विचारक तो हजारों साल से सोच रहे हैं और अभी तक कुछ निर्णय नहीं कर पाए। विचार किसी निर्णय पर आज तक नहीं पहुंचा है। इसलिए हमसे मत पूछो। तुम बचने का कोई उपाय करो। ज्योतिषी ने कहा कि उचित यही है कि कोई तेज घोड़ा हो तुम्हारे पास तो उसे लेकर निकल जाओ ताकि जितने दूर तुम जा सको चले जाओ। यह ठीक भी मालूम पड़ा। विचार में समय खोना उचित न था। उचित न था कि विचार में समय खोया जाए। आधी रात में ही, उसके पास जो तेज से तेज घोड़ा था, वह बुलवा लिया गया और वह राजा उस घोड़े पर सवार हुआ और उसने भागना शुरू किया।
सांझ थी करीब और निकल जाना था दूर ताकि मौत के बाहर हो जाएं। उस विदा होते क्षण में न तो उसे याद रही अपनी पत्नियों की, अपनी प्रेयसियों की जिनसे उसने कहा था तुम्हारे बिना एक क्षण भी जी नहीं सकता हूं। न याद रहे अपने मित्र, जिनसे उसने बार-बार कहा था कि तुम हो तो मेरे जीवन में खुशी है। न रहा याद राज्य, जिसके लिए जीआ था और मरा था, वह सब कुछ याद न रहा, याद रही एक बात कि भाग जाना है दूर और दूर और दूर, और वह घोड़े पर भागना शुरू कर दिया। उस दिन सुबह सूरज निकल आया और दोपहर हो गई और सूरज ढलने लगा और वह

भागता रहा। न उस दिन प्यास लगी उसे और न भूख। न उसे ख्याल आया कि रुकूं और पानी पी लूं। क्योंकि जितनी देर भी चूक जाता, समय उतनी देर और दूर निकलने से बच जाता, तो वह भागता रहा, भागता रहा।
सांझ जब सूरज ढलता था तो वह सैकड़ों मील दूर निकल गया था। और एक बगीचे में जब उसने जाकर एक वृक्ष से अपने घोड़े को बांधा तो सूरज डूबता था, और उसने देखा कि पीछे कोई काली छाया आकर खड़ी हो गई है, उसके कंधे पर हाथ रखे है। तो वह बहुत घबड़ा गया, वह सपना फिर से दोहरने लगा। और उसने पूछाः तुम कौन हो? उसने कहाः भूल गए, रात तो मैं सपने में आई थी, और मैं बहुत परेशान थी, क्योंकि तुम्हें इस बगीचे में, इस झाड़ के नीचे मरना था। यह बहुत दूर था और मैं चिंतित थी कि तुम इतने जल्दी इतने दूर कैसे पहुंच पाओगे। लेकिन धन्यवाद है तुम्हारे घोड़े को। तुम ठीक वक्त पर और ठीक समय पर और ठीक जगह आ गए हो। मैं सुबह से बैठी यहां तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूं। और बहुत बेचैन थी। कि पता नहीं तुम आ सकोगे कि नहीं। लेकिन घोड़ा तुम्हारा तेज है। और आदमी तुम हिम्मत के हो कि तुमने रुक कर पानी भी न पीआ और रोटी भी न खाई, मित्रों से विदा भी न ली। एक क्षण भी तुम खो देते तो में मुश्किल में पड़ जाती। लेकिन तुम ठीक वक्त पर और ठीक जगह आ गए हो, तुम्हें बहुत धन्यवाद। तुम्हारे घोड़े को बहुत धन्यवाद।
वह राजा दिन भर सोचता था कि दूर निकला जा रहा है, आखिर में पाया कि जिससे दूर निकल रहा था उसी के पास पहुंच गया। और हम सारे लोग भी जिन चीजों से दूर निकलना चाहते हैं आखिर में पाते हैं कि उन्हीं के मुंह में चले गए हैं। यह पूरे मनुष्य का जीवन उन, उन मौतों में पहुंचा देता है, उन मृत्युओं में, जिनमें कोई भी जाना नहीं चाहता। और उन परतंत्रताओं में बांध देता है जिनमें कोई भी बंधना नहीं चाहता। जीवन एक अजीब चक्कर में घूमता है।
यह प्राथमिक रूप से आपसे कहूं और तब आपसे उस बात को कहना मुझे आसान हो जाएगा कि किस भांति के गुलामियों में, किस भांति से हम खुद अपने को बांध लेते हैं। यह दिखाई पड़ जाए, तो स्वतंत्र होना कठिन नहीं है। और यह दिखाई पड़ जाए, तो सरल होना भी कठिन नहीं है।
आज की सुबह तो मैं सरलता पर ही कुछ थोड़ी सी बातें आपसे कहना चाहता हूं। क्योंकि जो जटिल है, जिसका मन कांप्लेक्स है, उलझा हुआ जटिलताओं में, वह कभी स्वतंत्र भी नहीं हो सकता है। और जिसका मन उलझा हुआ है भीतर वह जीवन के सत्य को भी कभी नहीं जान सकता है। क्योंकि जीवन के सत्य को जानने के लिए चाहिए एक सरल और निर्दोष चित्त, एक इनोसेंट माइंड, एक अत्यंत सरल, सीधा और निर्दोष मन। जटिल हम बहुत हैं। और जटिलता से मेरा मतलब है वे ही कड़ियां, वे ही जंजीरें जो हमने अपने हाथ से निर्मित की हैं, उन्होंने हमारे जीवन को जटिल कर दिया है।
कौन सी चीजों ने हमारे जीवन को जटिल किया है? यदि उन्हें बिना जाने हम सरल होने की कोशिश करेंगे, तो वह सरलता भी झूठी होगी। अधिक लोग जीवन की आंतरिक जटिलताओं को बिना समझे हुए सरल होने की कोशिश करते हैं, तक एक झूठी सरलता पैदा होती है, एक झूठी साधुता पैदा होती है, जिससे हम भलीभांति परिचित हैं।
मन तो जटिल होता है, लेकिन कपड़े, कपड़े थोड़े कर लिए जाते हैं, लंगोटी लगा ली जाती है। मन तो जटिल होता है, लेकिन घर-द्वार छोड़ कर कोई जंगल में चला जाता है। मन तो जटिल होता है, लेकिन भोजन कम कर लिया जाता है। मन तो जटिल होता है, लेकिन आदमी सेवा करने लगता है, प्रार्थना करने लगता है और पूजा करने लगता है।
स्मरण रखिए, लंगोटी लगा लेना बहुत आसान है, लेकिन लंगोटी लगाने से कोई सरल नहीं होता और न कोई साधु होता है। अगर साधुता वस्त्रों की बात होती, तो क्या कठिन था कि सभी लोग लंगोटिया न लगा लें। और साधुता अगर भोजन की बात होती, तो क्या कठिनाई थी कि भोजन थोड़ा कम न कर लिया जाए। और साधुता अगर इस तरह की बात होती कि घरों को छोड़ कर कोई जंगल में चला जाए, तो जो जंगल में रह रहे हैं वे सब साधु होते।

लेकिन साधुता इतनी सरल बात नहीं है। क्योंकि सरलता बिना लाए जो साधुता लाई जाती है वह और भी जटिलता पैदा कर देती है, और भी धोखा और सेल्फ डिसेप्शन, दूसरों को ही नहीं, अपने को धोखा पैदा कर देती है।
एक साधु के पास मैं था, उन्होंने मुझसे कहा कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है। एक बार, दो बार, तीन बार, मैंने उनसे पूछा कि अगर दुख न हो आपको तो मैं यह पूछूं कि यह लात आपने कब मारी थी? उन्होंने कहाः कोई पच्चीस, तीस वर्ष हुए हैं। तो मैंने उनसे कहाः दुख न पहुंचे तो मैं निवेदन करूं, कि लात ठीक से लग न पाई होगी। क्योंकि पच्चीस वर्ष तक! अगर लात लग गई होती तो उसकी याद, उसकी स्मृति होनी कठिन थी। कौन इसे याद रखे हुए हैं तीस वर्षों तक कि मैंने लाखों रुपये पर लात मार दी? और किसलिए याद रखे हुए हैं? लात ठीक से लग नहीं पाई। जब लाखों रुपये आपके पास रहे होंगे, तब आपका अहंकार कहता होगा कि मेरे पास लाखों रुपये हैं। और जब आप लाखों रुपये छोड़ दिए, तब से आपका अहंकार यह कह रहा है कि मैंने लाखों रुपये छा.ेड दिए हैं। अहंकार अपनी जगह खड़ा हुआ है, रुपयों के छोड़ने कोई भेद नहीं पड़ता है। चित्त जटिल है, लाखों रुपये थे तब जटिल था, अब और भी ज्यादा जटिल है, क्योंकि लाखों रुपये तो दिखाई भी पड़ते थे, मोटे थे, स्थूल थे, अब एक सूक्ष्म अहंकार पैदा हुआ है कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है। और यह सूक्ष्म अहंकार दिखाई भी नहीं पड़ता है। यह सूक्ष्म जटिलता मालूम भी नहीं पड़ती है।
तो हम चित्त को सरल किए बिना जो कुछ भी करेंगे आचरण में, जो कुछ भी करेंगे व्यवहार में, वह सबका सब और भी जटिलता पैदा कर देगा। साधुओं के चित्त असाधुओं से भी ज्यादा जटिल होते हैं। सज्जनों के चित्त दुर्जनों से भी ज्यादा जटिल होते हैं। क्यों? क्योंकि भीतर की जटिलता तो होती ही है, बाहर के विपरीत आचरण को जबरदस्ती थोप लेने से और भी जटिलता और भी उलझाव खड़ा हो जाता है। इसलिए सबसे पहले जरूरी है कि जटिलता कहां है, उसे समझें, परखें और विसर्जन कर दें। और बड़े रहस्य की और बड़े आनंद की बात यह है कि अगर चित्त की जटिलता को कोई उसके समग्र रूप में समझ ले, तो उसे छोड़ने के लिए कुछ भी करना आवश्यक नहीं होता है। उसका दिखाई पड़ना ही उसका छूटना भी हो जाता है। उसका दर्शन ही उसका विसर्जन भी हो जाता है। कुछ जीवन की चीजें ऐसी हैं कि हम उन्हें नहीं जानते, नहीं देखते, इसलिए वे बनी रहती हैं। हम उन्हें जान लें और देख लें, तो उनको विदा करने में क्षण भर की भी देर नहीं लगती।
क्या है जटिलता और कहां है? यह चित्त इतना उलझा हुआ क्यों है? यह चित्त इतना खंड-खंड क्यों है? ये चित्त के खंड एक-दूसरे के विरोध में निरंतर संलग्न क्यों हैं? हमें भ्रम यह रहता है कि हम एक व्यक्ति हैं हमारे भीतर। न मालूम कितने व्यक्तियों की भीड़ जमा रहती है। हम न मालूम कितने स्वरों को अपने भीतर समाए रहते हैं। हमारे भीतर न मालूम कितनी आवाजें एक ही साथ एक-दूसरे के विरोध में उठती रहती हैं, एक-दूसरे के खंडन में उठती रहती हैं। शाम को आप तय करके सोते हैं कि सुबह चार बजे उठ आऊंगा। और सुबह चार बजे आपके ही भीतर कोई कहता है कि रहने भी दो, आज ऐसी क्या बात है कल उठ लेंगे। दूसरे दिन आप फिर पछताते हैं और सोचते हैं कि यह तो बहुत बुरा हुआ। यह कैसे हुआ कि मैं नहीं उठा। और आज तो में पक्का संकल्प करता हूं कि आज की रात उठूंगा, और फिर सुबह चार बजे आप पाते हैं कि आपके भीतर कोई कहता है कि सोए भी रहो, उठने में क्या सार है, ये सब फिजूल की बातें हैं, देर से उठे कि जल्दी उठे क्या फर्क पड़ता है। क्या सांझ को जिसने निर्णय किया था कि सुबह उठूंगा, वही सुबह चार बजे कहने लगता है कि मत उठो। नहीं, कोई दूसरा स्वर, कोई दूसरा खंड, व्यक्तित्व का कोई दूसरा कोना बोलने लगता है। क्रोध होता है, तो क्रोध कर लेते हैं, क्रोध चला जाता है तो पछताते हैं और सोचते हैं बहुत बुरा हुआ। यह कौन सोचता है बहुत बुरा हुआ? क्या क्रोध करने वाला और यह सोचने वाला एक ही है? अगर यह एक ही है तो फिर क्रोध कैसे किया था? यह कोई दूसरा हिस्सा है, जो कहता है, पछताता है। और फिर कल हजार दफे तय करने के बाद कि क्रोध नहीं करूंगा, कल फिर क्रोध कर लेता है। यह क्रोध करने वाला कौन है फिर?

एक-एक आदमी के भीतर भीड़ है आदमियों की। बहुत से आदमी हैं। आदमी मल्टी- साइकिक है। एक ही मन नहीं है उसके भीतर, बहुचित्त हैं, बहुत से चित्त हैं, बहुत से मन हैं। और इन बहुत से मनों में इतना उलझाव है, इतना विरोध है कि हालत वैसी है जैसे एक बैलगाड़ी में चारों तरफ बैल जोत दिए हों और सभी बैलों को भगाया जा रहा हो, और बैलगाड़ी के अस्थिपंजर डांवाडोल हो रहे हों, गाड़ी कहीं जाती न हो, घसीटती हो थोड़ी देर एक तरफ, थोड़ी देर दूसरी तरफ, और बैल सब तरफ जुते हों और खींचे जा रहे हों, कहीं पहुंचना हो सकेगा? नहीं, थोड़ी देर में गाड़ी के अस्थिपंजर ढीले हो जाएंगे। थोड़ी देर में गाड़ी के टुकड़ों को लेकर भाग जाएंगे। गाड़ी ेनष्ट हो जाएगी, पहुंचना कहीं भी नहीं होगा। हर आदमी इसी भांति नष्ट हो जाता है। कहीं पहुंचना नहीं हो पाता।
जीवन में पहुंचना तभी संभव है जब जीवन में एक दिशा हो, एक चित्तता हो,
जब जीवन में एक मन हो। खंड-खंड न हो चित्त, अखंड हो। अखंड चित्त ही सरल चित्त होता है। खंडित चित्त सरल चित्त नहीं हो सकता।
खंडित चित्त ही जटिल चित्त है। टुकड़ों-टुकड़ों में टूटा हुआ चित्त। यह जो, यह स्थिति कैसे बन गई है? यह स्थिति कैसे खड़ी हो गई है? यह हम सबके ऊपर कैसा दुर्भाग्य है कि हमारा अखंड चित्त नहीं है? खंड-खंड है, टूटा हुआ है। कौन से कारण हैं?
कुछ कारण हैं बुनियादी। पहला, पहला कारणः हमारी शिक्षा, हमारी संस्कृति, हमारी सयता, हमारे जीवन के सारे प्रभाव एक, एक अजीब पागलपन हर आदमी में पैदा करवा देते हैं। और वह यह कि कोई भी आदमी खुद होने को राजी नहीं है, हर आदमी कोई और होना चाहता है। कोई मनुष्य जमीन पर वही होने को राजी नहीं है जो वह है, कोई और होना चाहता है। अ ब होना चाहता है, ब स होना चाहता है। एक भी आदमी वही होने को राजी नहीं है जो वह है। और तब, तब चित्त जटिल होता चला जाता है। यह वैसे ही है जैसे किसी बगिया में कोई उपदेशक पहुंच जाए, कोई गुरु पहुंच जाए और फूलों को जाकर समझाने लगे कि चमेली के फूल तू चंपा का हो जा; चंपा के फूल तू गुलाब का हो जा; गुलाब के फूल तू जुही का हो जा। हालांकि फूल इतने नासमझ नहीं हैं कि उपदेशक की बातों को मान लेंगे। आदमी जितना नासमझ कोई फूल नहीं है कि उपदेशक की बात मानेगा। पहली तो वह सुनेगा ही नहीं उसकी बकवास। लेकिन हो सकता है आदमी के साथ रहते-रहते कुछ फूलों के दिमाग खराब हो गए हों और वे सुन लें और मान लें, और गुलाब का फूल चमेली का होने लगे और चमेली का फूल जुही का होने लगे, तो उस बगिया में क्या होगा? उस बगिया में फिर फूल पैदा नहीं होंगे। क्योंकि गुलाब का फूल जब चमेली का होने की कोशिश करेगा, तो एक बात तय है कि वह चमेली का फूल तो हो नहीं सकेगा, दूसरी बात भी तय है, इस होने की कोशिश में गुलाब का फूल हो सकता था वह भी नहीं हो सकेगा, उस बगिया में फिर फूल पैदा नहीं होंगे, वह बगिया फिर उजाड़ हो जाएगी।
आदमी की बगिया उजाड़ हो गई है, उसमें फूल पैदा नहीं होते हैं। और कभी भूल-चूक से हो भी जाते हैं तो वे अपवाद हैं, वे नियम नहीं हैं। करोड़ों- करोड़ों लोगों में एकाध आदमी के जीवन में अगर फूल लग जाते हैं, तो यह कोई बड़े स्वागत की स्थिति नहीं है। शायद हमारी सब कोशिश के बावजूद भी वह आदमी किसी तरह हो जाता है यह दूसरी बात है। लेकिन हमारी कोशिश तो यही है कि वह न हो पाए।
हेनरी थॉरो स्कूल और कालेज का अध्ययन करके वापस लौटा, तो उसके गांव के
एक बूढ़े आदमी ने कहा कि मैं इस लड़के का बड़ा स्वागत करता हूं, यह विश्वविद्यालय की शिक्षा लेकर भी अपने को सही सलामत बचा कर वापस लौट आया। क्योंकि विश्वविद्यालय में शिक्षित होते-होते किसी की भी प्रतिभा नष्ट हो जाए यह तो नियम है, बच जाए यह दुर्घटना है, यह बिल्कुल एक्सीडेंट है। बीस-पच्चीस साल की शिक्षा के बाद भी कोई अपनी प्रतिभा को बचा कर सही सलामत घर आ जाए यह बड़ी अजीब घटना है, जो मुश्किल से कभी-कभी घटती है। और ऐसी ही हमारी पूरी संस्कृति है, पूरे जीवन की दिशा है, पूरे जीवन की फिलासफी है, जिसमें हम हर आदमी को यह प्रेरणा पैदा करते हैं कि तुम किसी और जैसे हो जाओ। हम किसी आदमी से यह नहीं कहते कि तुम अपने जैसे हो जाना; तुम जैसे हो, तुम जो हो, बीज-रूप में तुम जो हो तुम उसको ही विकसित करना। नहीं, किसी

बच्चे को यह नहीं कहा जाता। बच्चे से कहा जाता है राम जैसे हो जाओ, कृष्ण जैसे हो जाओ। या अगर पुरानी तस्वीरें थोड़ी धुंधली पड़ गई हैं तो विवेकानंद जैसे हो जाओ, गांधी जैसे हो जाओ; लेकिन किसी जैसे हो जाओ। किसी बच्चे को कभी कोई नहीं कहता कि तुम अपने जैसे हो जाना। क्योंकि हम मानते ही नहीं कि कोई अपने जैसे होने में भी कोई सार्थकता है। सार्थकता इसमें है कि किसी जैसे हो जाओ। और इस बात को जानते हुए कि आज तक कोई दूसरा मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य जैसा नहीं हुआ है।
अब तक दूसरा राम पैदा हुआ? दूसरे कृष्ण पैदा हुए? दूसरा क्राइस्ट पैदा हुआ है? या मोहम्मद? या महावीर? या बुद्ध? नहीं। लेकिन फिर भी हम न मालूम कैसे अंधे हैं कि इस बात को दोहराए चले जाते हैं कि किसी और जैसे हो जाओ। हर आदमी अनूठा है, अद्वितीय है, बेजोड़ है। और इस बेजोड़ आदमी को जब भी हम इस तरह की शिक्षा और ढांचे में ढालते हैं कि तुम किसी दूसरे जैसे हो जाओ। इसके जीवन में एक पंगुता, एक क्रिपिल्डनेस पैदा हो जाती है। इसका सारा जीवन सिकुड़ जाता है, दूसरे होने की कोशिश में यह बर्बाद हो जाता है। और दूसरे होने की कोशिश में इसके चित्त में इतने खंड हो जाते हैं। कोई खंड कहता है अपने जैसे हो जाओ, कोई खंड कहता है दूसरे जैसे हो जाओ, कोई खंड कहता है तीसरे जैसे हो जाओ, और इस दौड़ में, इस दौड़ में इसका व्यक्तित्व टूट जाता है, डिसइंटिग्रेटेड हो जाता है। और यह अब तक रहा है। और तब परिणाम क्या होते हैं? परिणाम दो होते हैं। या तो यह आदमी राम बनने की कोशिश में राम बन नहीं पाता। और अगर बन जाता है तो और भी खतरा हो जाता है, यह रामलीला का राम बन जाता है, जो कि और भी खतरनाक है। राम तो ठीक हैं, लेकिन रामलीला के रामों की कोई भी जरूरत नहीं है। क्योंकि वे झूठे, बेईमान और पाखंडी होंगे। अब्राहम लिंकन की कोई शताब्दी बनाई जा रही थी। और सारे अमरीका में खोजा गया ऐसा आदमी जो लिंकन जैसा दिखाई पड़ता हो। और ऐसा एक आदमी मिल गया जिसकी शकल-सूरत लिंकन जैसी मालूम होती थी। उसको लाया गया। उसने लिंकन का पार्ट किया। एक नाटक खेला गया उसमें उसने अब्राहम लिंकन का पार्ट किया। लेकिन पार्ट करने में वह इतनी मौज में आ गया और इतना प्रसन्न हो गया कि जब नाटक खतम हो गया और वह घर गया तो भी लिंकन के कपड़े उतारने को राजी नहीं हुआ। घर के लोगों ने बहुत समझाया कि यह ठीक है कि तुमने नाटक किया, लेकिन अब ये कपड़े बदलो। लेकिन वह कहने लगा, कौन कहता है कि मैं कपड़े बदलूं, मैं तो अब्राहम लिंकन हूं! बड़ी मुश्किल हुई। वह ठीक अब्राहम लिंकन जैसे भाषण करने लगा चौरस्तों पर खड़े होकर। और कोई भी मिलता तो वह उसी अकड़ और उसी हैसियत से बोलता जैसे अब्राहम लिंकन हो। अब्राहम लिंकन के कपड़े भी पहनता। आखिर गांव उससे परेशान आ गया। वह अब्राहम लिंकन से नीचे उतरने को राजी नहीं हुआ। जो एक दफे चढ़ गया नाटक में तो चढ़ गया। आखिर हालत इतनी हो गई कि गांव के लोगों ने कहा कि जब तक इसको गोली न मारी जाए तब तक यह राजी न होगा। क्योंकि लिंकन को गोली मारी गई, अब यह गोली खाएगा तभी मानेगा, यह मानने को राजी नहीं है।
यह जो आदमी है इसको हम कहेंगे, पागल, यह पागल हो गया। पागल होने का एक लक्षण यह है।
विंस्टीन चर्चिल को किसी ने पूछा, जब वह अपनी ख्याति की चरम सीमा पर
था दूसरे महायुद्ध में। तो किसी ने पूछा कि चर्चिल तुम्हें यह कैसे कब पता चला कि तुम महापुरुष हो गए हो? तो चर्चिल ने कहा कि जब इंग्लैंड में कुछ पागल यह कहने लगे कि हम विंस्टीन चर्चिल हैं, तो मैं समझ गया कि मैं भी महापुरुष हो गया हूं। जब कुछ पागल यह कहने लगे कि हम विंस्टीन चर्चिल हैं, तो मैं समझ गया कि मुझे भी वह जगह मिल गई जो महापुरुष को मिलनी चाहिए। कुछ लोग अब विंस्टीन चर्चिल होने को भी राजी हैं। लेकिन जिन लोगों ने कहाः वे पागल थे।
नेहरू जब जिंदा थे तो हिंदुस्तान में दस-पांच लोग थे जिनको यह ख्याल
था कि वे जवाहरलाल नेहरू हैं।
एक पागलखाने में नेहरू गए और उन्होंने वहां पूछा कि कभी कोई पागल यहां से ठीक भी होता है? तो पागलखाने के अधिकारियों ने कहा कि निश्चित। एक

पागल ठीक हो गया है, हम उसे रोके हुए हैं। दो-चार दिन पहले उसे छोड़ देना था, लेकिन रोके हैं, आपके हाथ से ही उसको हम मुक्ति दिलाना चाहते हैं।
उस पागल को लाया गया और नेहरू ने उससे पूछा कि क्या मित्र तुम ठीक हो
गए हो? उसने कहा कि मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं, लेकिन आप कौन हैं कृपा कर अपना परिचय दें?
तो नेहरू ने कहा कि मैं हूं जवाहरलाल नेहरू।
वह पागल हंसने लगा और बोला, दो-चार साल आप भी यहां रह जाएंगे तो ठीक हो जाएंगे। पहले मुझको भी यही ख्याल था कि मैं जवाहरलाल नेहरू हूं। आप घबड़ाइए मत, दो-चार साल यहां रह जाइए, बिल्कुल ठीक हो जाएंगे। मैं भी तीन साल में बिल्कुल ठीक हो गया।
यह विक्षिप्त चित्त का लक्षण है कि वह किसी दूसरे के साथ अपनी आइडेंटिटी कर ले, वह किसी दूसरे के साथ अपना तादात्म्य कर ले। लेकिन उनको हजारों साल से यह सिखाया गया है कि तुम किसी दूसरे जैसे हो जाओ। इसकी वजह से एक युनिवर्सल न्यूरोसिस पैदा हुई है सारी दुनिया में। एक सामूहिक पागलपन पैदा हो गया है सारी दुनिया में। इस शिक्षा के कारण कि तुम किसी दूसरे जैसे हो जाओ। और इसके कारण चित्त जटिल, और बहुत जटिल हो गया है। क्योंकि न तो आप दूसरे जैसे हो पाते हैं जब तक कि आप बिल्कुल पागल न हो जाएं। बिल्कुल पागल हो जाएं तो फिर कुछ कठिनाई नहीं रह जाती। आप हो जाते हैं राम, हो जाते हैं कृष्ण। कुछ ऐसे पागल संन्यासी हैं जिनको यह ख्याल पैदा हो जाता है कि हम ईश्वर हो गए, हम अवतार हो गए, हम तीर्थंकर हो गए, हम पैगंबर हो गए, हम यह हो गए, हम वह हो गए। ये सब पागलपन के लक्षण हैं, यह न्यूरोसिस है, यह दिमाग की खराबी है। लेकिन इतना दिमाग अगर खराब न हो पाए तो दिमाग जटिल हो जाता है, दिमाग उलझ जाता है। जो आप हो वह एक तरफ और जो आप होना चाहते हो वह दूसरी तरफ दौड़ और जो होने की आप कोशिश करते हो, अपने ऊपर थोपते जाते हो, थोपते चले जाते हो, वह तीसरी चीज, इस तरह बहुत सी पर्त आपके भीतर हो जाती हैं। और इन बहुत सी पर्तों में आप विभक्त और विभाजित हो जाते हो।
यह विभाजित व्यक्तित्व ही जटिल व्यक्तित्व है। कैसे यह ठीक हो? क्या करें? पहली बात, अपने होने को स्वीकार कर लें। स्वस्थ मनुष्य का पहला लक्षण हैः वह जो है, जैसा है उसे सहजता से स्वीकार करता है, कुछ और होने की दौड़ में नहीं पड़ता। जो अपने होने को, जैसा है, जो है, उसे सरलता से स्वीकार करता है।
स्वयं की स्वीकृति चित्त की सरलता की तरफ पहला कदम। आप अपने को स्वीकार करते हैं? अगर नहीं, तो आपका चित्त कभी भी सरल नहीं हो पाएगा। लेकिन घबड़ाहट लगती है कि अगर हमने अपने को स्वीकार कर लिया तो हम तो बहुत बुरे आदमी हैं--बेईमान हैं, चोर हैं, हिंसक हैं, क्रोधी हैं, लोभी हैं, मोही हैं, और न मालूम क्या-क्या हैं। अगर हमने अपने को स्वीकार कर लिया तो फिर तो हम गए। फिर तो हम रह जाएंगे चोर, बेईमान, क्रोधी, कामी। फिर तो हममें कोई परिवर्तन नहीं हो सकेगा।
मैं आपसे निवेदन करता हूं, तभी परिवर्तन हो सकेगा जब आप अपने को स्वीकार करेंगे। उसके पहले कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। क्यों? क्योंकि जब हिंसक आदमी अहिंसक होने की कोशिश में लग जाता है, तो आपको पता नहीं है, हिंसक आदमी अहिंसक होने की कोशिश में कभी अहिंसक नहीं हो पाता, सिर्फ अपनी हिंसा को ढांक लेता है और अहिंसा के वस्त्र पहन लेता है। तो ऊपर से अहिंसा की बातें करने लगता है और भीतर हिंसा पलती है। ऊपर से अक्रोध और शांति की बातें करने लगता है भीतर क्रोध पलता है।
एक व्यक्ति था बहुत क्रोधी, उसके घर के लोग परेशान हो गए, उसने अपनी पत्नी की हत्या कर डाली, और अपने एक बच्चे को कुएं में फेंक दिया। उसके क्रोध से सभी बहुत परेशान हो गए। तो गांव में एक संन्यासी का आगमन हुआ, तो वे उस क्रोधी युवक को उस संन्यासी के पास ले गए। वह खुद भी परेशान था अपने क्रोध से। खुद भी बेचैन था। क्रोध से दूसरे ही तो बेचैन नहीं होते, खुद भी तो बहुत पीड़ा और अग्नि झेलनी पड़ती है। खुद ही ज्यादा झेलनी पड़ती है। खुद के लिए ही नरक पैदा हो जाता है। वह खुद परेशान था। पत्नी को मार कर दुखी

हुआ था, बच्चे को फेंक कर कष्ट पाया था। मुकदमा चला, बामुश्किल मुकदमे से छुटा था। बहुत कष्ट थे। और फिर भी क्रोध पीछा नहीं छोड़ता था। वह भी चाहता था क्रोध पीछा छोड़ दे। संन्यासी के पास ले गए। संन्यासी ने हंस कर कहाः जैसा कि सभी संन्यासी हंस कर कहते हैं। संन्यासी ने हंस कर कहा कि इसमें क्या बात है, क्रोध को छोड़ दो। जैसे हम किसी बीमार से कहें कि इसमें क्या बात है, बीमारी को छोड़ दो।
ये सारे धर्मों की शिक्षा यही है, क्रोध छोड़ दो, लोभ छोड़ दो, बेईमानी छोड़ दो। जैसे छोड़ना आसान है। जैसे कि छोड़ना संभव है। उस क्रोधी युवक ने कहा कि अच्छा में छोड़ने को राजी हूं। उस संन्यासी ने कहा कि तुम छोड़ दो संसार, संन्यासी हो जाओ, तो ही तुम्हारा चित्त पूरी तरह शांत हो सकेगा। वह संन्यासी हो गया। क्रोधी आदमी कुछ भी हो सकता है। घर छोड़ कर संन्यासी भी हो सकता है। यह भी क्रोध का ही एक हिस्सा हो सकता है। वह छोड़ कर संन्यासी हो गया।
शांत आदमी होता थोड़ी-बहुत देर सोचता, वह था क्रोधी सोचने की फुर्सत कहां थी, उसने वहीं कपड़े छोड़ दिए, उसने कहा कि यह हुआ मैं संन्यासी। अगर क्रोध से छुटकारा होता है तो मैं संन्यासी हुआ जाता हूं। उसने कपड़े बदल लिए। उस दिन उसके कपड़े रंग दिए गए। अब वह संन्यासी हो गया। और उसका नाम रख दिया गया, मुनि शांतिनाथ हो गए वे। क्योंकि संन्यासी होने के लिए दो-तीन चीजों की जरूरत है--कपड़े बदलने की, नाम बदल लेने की, इस तरह की चीजों की जरूरत है, फिर कोई भी संन्यासी हो सकता है। हिंदुस्तान में इतने संन्यासी इसीलिए तो हो जाते हैं कि हमको यह सस्ती तरकीब मिल गई है। नाम बदल लेना, कपड़े बदल लेना। तो ऋषि-मुनि यहां पैदा ही होते चले जाते हैं रोज। उनकी कोई कमी नहीं। क्योंकि हमें एक नुस्खा मिल गया, एक सीक्रेट हमको मिल गया। नाम बदल लो, कपड़े बदल लो, बात खतम हो जाती। वह आदमी भी संन्यासी हो गया। उसका नाम हो गया, मुनि शांतिनाथ। वह इतनी ताकत से भाषण करता था जिसका हिसाब नहीं। क्योंकि सारा क्रोध अब भाषण देता था। वह इतना संयमी था जिसका हिसाब नहीं, क्योंकि सारा क्रोध अब संयम करता था। वह रात-रात भर सीधा खड़ा रहता था। महीनों मौन से बैठा रहता था। उलटा शीर्षासन करता था और न मालूम क्या- क्या नासमझियां करता था। तो क्रोधी आदमी था, वह कुछ भी कर सकता था। क्योंकि क्रोधी आदमी कोई भी नासमझी कर सकता है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। तो उसकी बड़ी प्रसिद्धि फैलने लगी कि वह महायोगी है। क्योंकि सीधा-सादा आदमी न था, वह बहुत उपद्रवी चित्त का आदमी था। सीधा-सादा आदमी पांच मिनट शीर्षासन करे, वह पांच घंटे कर सकता था। तो क्रोधी आदमी था। उसका क्रोध सारा का सारा इन बातों में प्रकट होने लगा। वह महीने-महीने के उपवास कर लेता था। क्रोधी आदमी कुछ भी कर सकता है। उसकी ख्याति फैलने लगती है।
वह देश की राजधानी में पहुंचा। एक मित्र जो बचपन से उसका साथी था, और उसके क्रोध को भलीभांति जानता था, वह उससे मिलने गया। संन्यासी भी, मुनि शांतिनाथ भी पहचान तो गए कि यह मेरा मित्र है। लेकिन जो लोग ऊंचे हो जाते हैं वे फिर नीचे लोगों को कभी पहचानते नहीं। तो उन्होंने देख तो लिया कि मेरा मित्र है, लेकिन देख कर भी पहचाना नहीं। कौन पहचानता है? पहचान तब तक होती है, जब तक हम एक ही तल पर होते हैं। जब कोई ऊंचे तल पर चला जाता है तो कोई पहचानता नहीं, किसी को कोई नहीं पहचानता। तो वह मुनि ने भी पहचाना नहीं। उसके मित्र ने समझ तो लिया कि वह पहचान गया है, लेकिन पहचानना नहीं चाहता है। तो उसने पूछा कि क्या मैं पूछ सकता हूं मुनिजी कि आपका नाम क्या है? तो उसने कहाः मेरा नाम है, शांतिनाथ। मिनट, दो मिनट और कुछ बात चली। उसके मित्र ने फिर पूछा कि क्या मैं पूछ सकता हूं आपका नाम क्या है? उसने कहाः मैंने कह तो दिया कि शांतिनाथ। फिर मिनट, दो मिनट बात चली, उसके मित्र ने फिर पूछा कि क्या मैं पूछ सकता हूं आपका नाम क्या? उसने डंडा उठा लिया, उसने कहा कि समझते हो कि नहीं, मैंने कहा कि शांतिनाथ। उसने कहा कि मैं समझ गया कि आप शांति के अवतार हैं। वह क्रोध अपनी जगह बैठा हुआ है। न कपड़े बदलने से बदलता है, न नाम बदलने से बदलता है। वह अपनी जगह बैठा हुआ है।
तो हमारे भीतर क्रोध है, हिंसा है, घृणा है। इनको ढांक लेने से, उलटा काम कर लेने से कोई परिवर्तन पैदा नहीं होता है। बल्कि अक्सर बेईमान आदमी

ईमानदारी के कुछ काम करने लगता है ताकि बेईमानी छिप जाए। और पापी मंदिर बनवाने लगते हैं ताकि पाप छिप जाए। और क्रोधी मुस्कुराने लगते हैं और शांति के चेहरे बना लेते हैं ताकि क्रोध छिप जाए। और हिंसक अहिंसा के पाठ पढ़ने लगते हैं, अहिंसा परमोधर्माः कहने लगते हैं ताकि हिंसा छिप जाए। लेकिन जीवन में इनसे कोई क्रांतियां नहीं होती हैं।
जीवन की क्रांति का मार्ग कुछ और है। वह चित्त की विकृतियों को छिपा लेने का नहीं, चित्त की विकृतियों के विरोध में कोई दूसरे सिद्धांत खड़ा कर लेने का नहीं, बल्कि चित्त की विकृतियों के, चित्त में जो-जो बुराइयां हैं उनके सम्यक दर्शन का है, उनके ठीक-ठीक निरीक्षण का है, उनसे ठीक-ठीक परिचित होने का है। और अगर कोई व्यक्ति अपने भीतर की पूरी हिंसा को ठीक से जान ले और अपने क्रोध से ठीक से परिचित हो जाए, तो मैं आपसे कहना चाहूंगा कि यह ज्ञान, यह बोध कि मेरे भीतर कितना क्रोध है और कैसा क्रोध है, क्रोध के बाहर ले जाने का द्वार बन जाता है।
जैसे हम यहां बैठे हैं और मकान में आग लग जाए और चारों तरफ आग की लपटें जलने लगें और मैं आपको समझाऊं कि मकान में आग लगी है कृपा करके बाहर निकल जाइए और आपको आग दिखाई न पड़ती हो, तो आप कहेंगे कि जरूर मैं निकलूंगा लेकिन थोड़ा काम कर लूं फिर निकलूं, थोड़ा अपनी पत्नी को पूछूं, पति हो पति से पूछूं, मित्रों से पूछूं, फिर निकल जाऊंगा, थोड़ा विचार कर लूं, ऐसी जल्दी भी क्या है। अगर आपको लपटें न दिखाई पड़ती हों, और मैं आपको समझाऊं कि आग लगी है घर में बाहर निकल जाइए। तो आप पच्चीस बहाने करेंगे कि अभी मुझे जरूरी दूसरा काम है वह मैं कर लूं फिर निकल जाता हूं। क्योंकि आपको लपटें दिखाई नहीं पड़तीं। आप पूछेंगे कि महाराज लपटें लगी हैं तो निकलने का मार्ग क्या है? विधि क्या है? मेथड क्या है? कौन सी साधना करूं जिससे बाहर निकल जाऊं? ये सब पोस्टपोन करने की होशियारियां हैं यह पूछना कि कौन सी विधि है, कौन सा मार्ग है, कौन सा रास्ता है। लेकिन आपको दिखाई पड़ जाए कि आग लगी है, तो किसी को उपदेश करने की जरूरत न रह जाएगी। अगर आपको दिखाई पड़ जाए कि मकान जल रहा है, तो आप अपने बगल में बैठे मित्र से भी नहीं पूछेंगे कि बाहर निकलें कि न निकलें। कोई यहां किसी से नहीं पूछेगा कि बाहर निकलना है या नहीं निकलना है। हम सारे लोग फिर बाहर ही मिलेंगे, भीतर मिलने की फुर्सत भी किसी को भी नहीं होगी। सारे लोग बाहर हो जाएंगे बिना पूछे कि हम कैसे बारह हो जाएं।
आग की लपटें अगर दिखाई पड़ जाएं, तो वह दर्शन बाहर ले जाने का द्वार बनता है। अगर किसी को भीतर अपना पूरा क्रोध दिखाई पड़े, पूरी घृणा, पूरा लोभ, पूरी हिंसा दिखाई पड़े, तो इतने जोर से लपटें लगी हुईं मालूम पड़ेंगी भीतर कि आप रुक कर विचार करने की फुर्सत नहीं पाएंगे कि मैं कैसे बाहर निकल जाऊं। वह दर्शन, वह बोध, वह अवेयरनेस आपको बाहर ले जाने के लिए अपने आप एक गहरी प्रेरणा बन जाएगी और आप बाहर हो जाएंगे।
इसलिए पहला सूत्र है चित्त की सरलता के लिए, आप जो भी हैं कृपा करके उससे अन्यथा होने की कोशिश न करें, कुछ और बनने की कोशिश न करें। कृपया कोई आदर्श बना कर उस ढांचे में अपने को ढालने की कोशिश न करें। राम, कृष्ण, बुद्ध बनने की कोशिश न करें। पहली बात है आप जो हैं उसे पूरी तरह स्वीकार कर लें। समग्र स्वीकृति जो मैं हूं चित्त की सरलता के लिए अनिवार्य शर्त है। टोटल एक्सेप्टिबिलिटी, पूरी तरह समग्ररूपेण मैं जो हूं। इसमें कुछ काट-छांट करने की जरूरत नहीं है। जो भी हूं, हिंसा है तो हिंसा, पाप है तो पाप, घृणा है तो घृणा, जो भी है, मैं जो भी हूं उसकी पूर्ण स्वीकृति।
और पूर्ण स्वीकृति के बाद दूसरा तत्व हैः अपने भीतर आत्म-निरीक्षण। सेल्फ-ऑब्जर्वेशन। क्या है मेरे भीतर उसे जानने की खोज। जो आदमी किन्हीं चीजों के विरोध में होता है वह कभी निरीक्षण नहीं कर पाता। क्योंकि वह उन चीजों को दबाता है, देखना नहीं चाहता। हम कभी अपने शत्रु का निरीक्षण नहीं कर सकते हैं। क्योंकि जो हमारा शत्रु है उसे हम देखना भी नहीं चाहते, तो निरीक्षण कैसे करेंगे। निरीक्षण तो हम उसका कर सकते हैं जो मित्र है, जिसे हमने स्वीकार किया है, जिसे हमने अपने निकट लिया है, उसका हम निरीक्षण कर सकते हैं।

तो अगर क्रोध आपका शत्रु है तो आप उसका निरीक्षण कभी नहीं कर सकेंगे। अगर लोभ आपका शत्रु है तो उसका निरीक्षण कभी न कर सकेंगे। आप उसे दबा देंगे अपने हृदय के ऐसे कोने में जहां वह आपको कभी दिखाई न पड़े। अगर सेक्स आपका शत्रु है तो उसको आप दबा देंगे ऐसे कोने में कि उसका आपको दर्शन ही न हो। और जब भी वह दिखाई पड़े तब राम-राम जप कर उसको और भीतर कर देंगे ताकि वह दिखाई न पड़े। फिर वह सपने में आएगा। ऐसे दिन में कभी नहीं आएगा क्योंकि आपने उसको अंधेरे कोनों में दबा दिया। इसलिए अच्छे लोग बुरे सपने देखते हैं और बुरे लोग अच्छे सपने देखते हैं। क्योंकि बुरे लोग अच्छाइयों को दबा देते हैं वे सपने में आती हैं। सभी बुरे लोग सपनों में संन्यासी हो जाते हैं। और सभी अच्छे लोग सपनों में सब पाप करते हैं जो कि बुरे लोग दिन में करते हैं, क्योंकि वे बुराइयों को दबा देते हैं, वे सपने में उठ आती हैं। हमारे भीतर हम दबाते रहते हैं। इस दमन से कोई छुटकारा नहीं होता, और इस दमन से कभी आत्म-निरीक्षण भी नहीं होता है।
इसलिए सप्रेशन नहीं, दमन नहीं, किसी चीज को दबाना नहीं, बल्कि उसे जानना, देखना, उघाड़ना। हमारी शिक्षा ने, तथाकथित नैतिक शिक्षा ने हर आदमी को दमन करना सिखा दिया है। हर बात को दबा देते हैं। हर बात को नीचे दबा देते हैं। फिर चित्त में विकृति शुरू होती है। क्योंकि दबी हुई ताकतें धक्के मारती हैं। जैसे कोई भाप को दबा दे, बर्तन के नीचे भाप चल रही हो और बर्तन के ऊपर पत्थर रख दें तो भाप धक्के मारेगी। और यह भी हो सकता है छोटी सी केतली अगर बंद कर दी जाए, तो हो सकता है पूरे घर को विस्फोट में उड़ा दे। सारा घर एक्सप्लोजन में हो जाए, आग लग जाए। हम सब भी अपने मन की ताकतों को दबाए हुए बैठे हैं। और इस दमन के परिणाम यह होते हैं कि कभी-कभी विस्फोट होते हैं। व्यक्तिगत रूप से होते हैं तो आदमी पागल हो जाता है। और सामूहिक रूप से होते हैं तो लड़ाइयां हो जाती हैं। हिंदू मुसलमान से लड़ लेता है। हिंदी बोलने वाला गैर हिंदी बोलने वाले से लड़ लेता है। गुजराती मराठी से लड़ लेता है। हिंदुस्तानी पाकिस्तानी से लड़ लेता है। रूस अमेरिका से लड़ ले, जर्मनी इंग्लैंड से लड़ ले, ये सारी बेवकूफियां इसलिए पैदा होती हैं कि समाज के चित्त में इतने वेग इकट्ठे हो जाते हैं कि बिना एक बड़े युद्ध के उनका निष्कासन नहीं हो पाता।
क्या आपको पता है, पहला महायुद्ध हुआ, पहले महायुद्ध में साढ़े तीन करोड़ लोग मारे गए। और पहले महायुद्ध में जब इतनी बड़ी भयंकर हत्या हुई, तो एक अजीब बात सारी दुनिया के मनोवैज्ञानिकों ने अनुभव की, जो बिल्कुल कभी पहले अनुभव नहीं की गई थी। और वह यह कि पहला महायुद्ध जितने वर्ष चला, उतने वर्ष में चोरियां कम हो गईं। उतने वर्ष में हत्याएं कम हो गईं। आत्महत्याएं कम हो गईं। उतने वक्त में लोग हमेशा की बजाय कम पागल हुए, पागलखानों में कम लोग भर्ती हुए। और पागलखानों में से ज्यादा लोग स्वस्थ होकर बाहर आ गए। बड़ी घबड़ाहट हुई कि यह बात क्या है, युद्ध का इससे संबंध क्या है?
फिर दूसरा महायुद्ध हुआ, पांच करोड़ लोगों की हत्या हुई। और तब पाया गया कि और भी बड़े पैमाने पर कम हत्याएं हुईं उतने दिनों में, कम डकैतियां हुईं, कम आत्महत्याएं हुईं, कम लोग पागल हुए, ज्यादा पागल ठीक हो गए। क्या मतलब?
फिर दो महायुद्धों के अनुभव से यह बात समझ आई कि असल में युद्ध हो जाता है तो सामूहिक रूप से हमारा पागलपन निकल जाता है, इसलिए व्यक्तिगत रूप से पागल होने की जरूरत नहीं रह जाती। युद्ध हो जाता है तो सामूहिक रूप से हम हत्या कर लेते हैं, तो व्यक्तिगत से हत्या करने का कोई कारण नहीं रह जाता। यही तो वजह है कि जब युद्ध होता है तो मुर्दे लोग भी उठ-उठ कर सुबह से अखबार पढ़ने लगते हैं, मुर्दे भी। जब युद्ध होता है तो मुर्दे भी रेडियो खोल कर सुनने लगते हैं। और जब युद्ध होता है तो मरघट में भी ताजगी आ जाती है। लोग सुबह से ही बड़े प्रसन्न मालूम होते हैं कि क्या खबर आई, क्या खबर नहीं आई। क्यों? हमारे भीतर जो रोग हैं उनका सामूहिक निष्कासन हो रहा है, हम उसमें रस लेते हैं।

रास्ते पर दो आदमी लड़ रहे हों, और आप लाख काम से गुजर रहे हों तो भी खड़े होकर देख लेने का मन होता है। क्यों? दो आदमियों को लड़ते देखते आपके भीतर लड़ाई करने के जो वेग दबे हैं उनका निष्कासन हो जाता है, वे निकल जाते हैं। इसलिए तो इतनी हत्याओं की फिल्में बनती हैं। इतनी डिटेक्टिव कहानियां पढ़ी जाती हैं, जासूसी उपन्यास पढ़े जाते हैं। मर्डर--कि अदालत में मुकदमा चलता हो तो सैकड़ों लोग देखने इकट्ठे होते हैं। यह बेवकूफियों में इतना रस क्यों है? इनमें रस इसलिए है कि हमारे भीतर जो वेग हम दबा कर रखते हैं उनको निकलने का मौका मिल जाता है। और अगर न मिले, न मिले तो फिर हम व्यक्तिगत रूप से निकालने की कोशिश करते हैं। और हम निकाल रहे हैं सारे लोग। पति पत्नियों पर निकाल रहे हैं, उनकी गर्दनें दबाए हुए हैं। पत्नियां पतियों से निकाल रही हैं, वे भी उनकी गर्दन दबाए हुए हैं। बच्चे बाप से निकाल रहे हैं, बाप बच्चों से निकाल रहे हैं। हर घर में, हर परिवार में, हर पड़ोस में, हर मोहल्ले में, गांव में, नगर में, हम एक-दूसरे के साथ हिंसा कर रहे हैं। हिंसा हमारे भीतर दबी है, उसको निकालने का रास्ता खोज रहे हैं।
यह दमन का परिणाम हुआ है। और राजनैतिक मर जाएं सिर पीट-पीट कर, दुनिया में शांति नहीं हो सकेगी। नहीं हो सकेगी इसलिए क्योंकि जब तक मनुष्य के मन में दमन है, जब तक एक-एक मनुष्य अपने होने को स्वीकार नहीं करता है। और स्वीकृति के द्वारा अपने जीवन को ट्रांसफार्म नहीं करता है, बदलता नहीं है, तब तक दुनिया में युद्ध बंद नहीं हो सकेंगे। राजनैतिक चिल्लाते रहें कि युद्ध बंद करना है। और धार्मिक गुरु चिल्लाते रहें कि शांति लाओ भगवान, और यज्ञ और हवन करते रहें, इनसे कुछ भी नहीं होगा। क्योंकि असली बात आदमी के मन में दमित वेग इकट्ठे हो गए हैं और उनकी वजह से सारी जटिलता पैदा हो रही है। और इसलिए युद्ध बढ़ते जा रहे हैं। क्योंकि वेग दमन का बढ़ता जा रहा है। जितना-जितना आदमी सय हो रहा है, जितनी ज्यादा सिविलाइजेशन आ रही है उतने ज्यादा पागल होने की संख्या बढ़ती जाती है यह आपको पता है?
अमरीका सबसे ज्यादा पागल आदमी पैदा करता है। क्योंकि अमरीका सबसे ज्यादा सय है। अगर आपको भी सय होना है तो भी ज्यादा पागल पैदा करना शुरू करिए। वह कौम सुप्रीम सिविलाइजेशन पर पहुंच जाएगी जो पूरी की पूरी पागल हो जाए। सुप्रीम सिविलाइजेशन होगी वह। वह चरम सयता होगी, चरम संस्कृति। क्योंकि मापदंड क्या है सयता का? मापदंड यह है कि आपकी कौम में कितने लोग पागल होते हैं। इस वक्त अमरीका सबसे सय मुल्क है। क्योंकि पंद्रह लाख लोग रोज अपने दिमागी चिकित्सा के लिए डाक्टरों के दरवाजों पर जाते हैं। पंद्रह लाख लोग रोज। सरकारी आंकड़े हैं ये। और सरकारी आंकड़े हमेशा ऐसी बातों में सच नहीं बोलते। संभावना तीस लाख लोगों के जाने की होगी। तब कहीं सरकार पंद्रह लाख बोलती है। क्योंकि पागलों की संख्या ज्यादा होना कोई सुखद बात नहीं है। इसलिए कोई सरकार पूरे आंकड़े बता नहीं सकती। लेकिन अभी अमरीका की सरकार को शायद यह पता नहीं है कि यह सय होने का लक्षण है। घबड़ाओ मत, धीरे-धीरे पागल होते चले जाओ। जब तुम्हारे यहां एक भी डाक्टर न बचे जिसके पास पागल जा सकें, क्योंकि सभी पागल हो जाएं, तब तुम समझना कि परमात्मा ने सबसे बड़ी चीज पैदा कर दी, सबसे बड़ी संस्कृति पैदा कर दी। सयता पागलपन लाती है, क्योंकि सयता दमन लाती है, सप्रेशन लाती है। और
हम सारे लोग अपने को दबाते हैं, दबाते हैं, दबाते हैं, और पागल होने का रास्ता खोजते हैं। और इस ख्याल में मत रहिए कि दूसरे लोग पागल हैं। हर तीन आदमियों में एक आदमी करीब-करीब पागल है। और बाकी दो आदमी भी पागल नहीं है ऐसा मत सोचिए, थोड़े कम पागल हैं ऐसा सोचिए। बिल्कुल पागल न होना बड़ी कठिन बात है। और जब कोई ऐसा आदमी हमारे बीच पैदा हो जाता है जो बिल्कुल पागल नहीं होता, तो हम सब पागलों के दिमाग बड़े गड़बड़ हो जाते, हम सोचते, इसको मारो, यह आदमी पागल है, या कुछ गड़बड़ है।
गांधी को मार डाला, एक आदमी था हमारे बीच जो पागल नहीं था, तो पागलों
ने इकट्ठा होकर मार डाला। क्राइस्ट को सूली पर लटका दिया, क्योंकि बाकी पागलों देखा कि यह आदमी गड़बड़ मालूम होता है। सुकरात को जहर पिला दिया। क्यों?
एक कहानी कहूं आपसे।

एक गांव में ऐसा हुआ, एक जादूगर आया और उसने एक कुएं में कुछ मंत्र पढ़
कर कोई पुड़िया डाल दी। और खबर कर दी कि इस कुएं का पानी जो भी पीएगा वह पागल हो जाएगा। उस गांव में दो ही कुएं थे। एक कुआं गांव का था और एक राजा के महल का था। गांव भर के लोगों ने बहुत कोशिश की कि पानी न पीएं, लेकिन कितनी देर तक प्यास से बचते। आखिर शाम होते-होते सबने पानी पीया। पूरा गांव पागल हो गया। सिर्फ राजा, रानी और वजीर पागल नहीं हुए, उनका कुआं दूसरा था। सांझ होते-होते सारे गांव में एक अफवाह फैलने लगी कि ऐसा मालूम होता है राजा, रानी और वजीर का दिमाग खराब हो गया है। क्योंकि गांव भर का दिमाग एक तरह का हो गया और राजा, रानी और वजीर का गड़बड़ दिखाई पड़ने लगा। वे माइनारटी में रह गए। अब मैजारटी पागल हो चुकी थी। तो बहुमत ने सांझ को सभा की, उस गांव में सभा की, और उन्होंने यह विचार किया कि अब हम क्या करें, राजा का दिमाग खराब हो गया है, इसको बदलना चाहिए। नहीं तो सब बर्बाद हो जाएगा। राजा को खबर मिली की जनता सभा कर रही है। तो राजा ने अपने वजीर से पूछाः अब हम क्या करें? वजीर ने कहाः एक ही रास्ता है, समय चुकने के पहले हम चलें और उस कुएं का पानी पी लें, जिसका सबने पीआ है।
राजा, रानी और वजीर गए और उस कुएं का पानी पी लिया। उस रात उस गांव में जलसा मनाया गया। और गांव के लोगों ने राजा का स्वागत किया कि उसका दिमाग अब ठीक हो गया।
ऐसी हालत है। जब भी कोई स्वस्थ आदमी हमारे बीच में पैदा होता है तो हम गोली मार देते हैं, जहर पीला देते हैं। क्यों? हमारे पागलपन में वह आदमी समझ में नहीं आता कि यह बातें क्या कह रहा है। यह हमने आज तक स्वस्थ आदमियों के साथ व्यवहार किया है। लेकिन इतना स्मरण रखिए, यह पागल होने वाली सयता बहुत दिन चलने वाली नहीं है। यह पागल होने वाला मनुष्य बहुत दिन चलने वाला नहीं है। क्योंकि अब तक तो हमारे हाथ में छुरी-तलवार थे छोटे- छोटे, अगर पागल भी होते थे थोड़ी-बहुत हत्या करते थे, अब एटम बम, हाइड्रोजन बम हैं पागलों के हाथ में। और पोलिटिशियन जो होता है, राजनैतिक जो होता है, वह तो हम सबमें सबसे ज्यादा जो पागल होता है वह राजनीतिज्ञ हो जाता है। हम सबमें जो सबसे ज्यादा पागल होता है वह राजनीतिज्ञ हो जाता है। इन पागलों के हाथ में बड़ी ताकत है। और वह ताकत कभी भी खतरा ला सकती है। सारी दुनिया को डूबा सकती है।
इसलिए एक-एक आदमी का कर्तव्य है यह कि वह अपने भीतर से पागलपन को विदा करे। सरल हो जाए। जटिलता को विदा करे। यह न केवल उसके हित में बल्कि सारी मनुष्यता के हित में है।
जटिलता है दूसरे जैसे होने की कोशिश से। सरलता आएगी अपने जैसे होने
के स्वीकार से। और उस स्वीकृति से घबड़ाएं न कि आप गिर जाएंगे नीचे, उसी स्वीकृति से ट्रांसफार्मेशन पैदा होता है। उसी स्वीकृति से रूपांतरण होता है। क्यों? क्योंकि जैसे ही हमें दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है कि हमारा भीतर कैसा नरक है, उस नरक के हम बाहर निकलने में समर्थ हो जाते हैं। कैसे यह सामर्थ्य हमारा विकसित होगा कि हम उसके बाहर निकल जाएं और रूपांतरण हो जाए, उसकी चर्चा मैं कल सुबह शून्यता के संबंध में बोलते समय आपसे करूंगा। क्यों? क्योंकि जितने विचारों से भरा हुआ मस्तिष्क होता है उतना अशांत होता है, उतना जटिल होता है। जितना विचारों से शून्य हो जाता है मस्तिष्क उतना शांत हो जाता है, उतना स्वस्थ हो जाता है।
शून्य मस्तिष्क कैसे हो जाए, उसकी बात मैं कल करूंगा। सरल मन कैसे हो सकता है, तो मैंने दो सूत्र आपसे कहे हैं--स्वयं के प्रति सर्वांगीण स्वीकृति, टोटल एक्सेप्टिबिलिटी। और उस स्वीकृति से ही रूपांतरण पैदा होता है उसी भांति--जैसे हम एक घर में दीया जला दें तो अंधकार नहीं पाया जाता है--वैसे ही अगर अपने भीतर हम स्वीकृति का दीया जला लें और परिपूर्ण रूप से अपने को अंगीकार कर लें, तो उस अंगीकार के बोध से ही एक ऐसा दीया जलता है जिसके प्रकाश में हिंसा और घृणा और क्रोध और पाप तिरोहित हो जाते हैं। क्योंकि जहां प्रकाश है वहां अंधकार नहीं है। और जो स्वयं को स्वीकार नहीं करता उसके जीवन में कभी भी प्रकाश निर्मित नहीं होता है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कही हैं, कल इस बात को मैं पूरा करूंगा कि इस चित्त की सरलता को शून्यता तक कैसे ले जाया जा सकता है। और जो शून्य हो जाता है वह पूर्ण से भर जाता है। जैसे वर्षा होती है, आकाश में बादल घिरते हैं और पानी गिरता है, तो पानी गिरता है पहाड़ों पर भी, लेकिन पहाड़ खाली के खाली रह जाते हैं क्योंकि पहाड़ पहले से भरे हुए हैं। और झीलों में भी पानी गिरता है, गड्ढों में भी पानी गिरता है, लेकिन गड्ढे भर जाते हैं, क्योंकि वे खाली हैं। परमात्मा भी चौबीस घंटे बरस रहा है, जो खाली हैं वे परमात्मा से भर जाते हैं और जो भरे हुए हैं वे खाली रह जाते हैं। तो कैसे हम खाली हो सकते हैं अपने से ताकि परमात्मा हमें भर दे, उसकी बात मैं कल करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत और आनंदित हूं। सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सत्य की प्यास
चौथा प्रवचन

आत्म-विस्मरण नहीं, आत्म-स्मरण

मेरे प्रिय आत्मन्!
बहुत से प्रश्न मेरे सामने हैं, अभी तीन प्रश्न रखे गए हैं, इन तीन पर मैं पहले अपना विचार आपके सामने रखूं और फिर और प्रश्नों को लूंगा। सबसे पहले सबसे अंतिम प्रश्न लेता हूं तीसरा।

वैज्ञानिक अपने काम में खुद को डूबा देता है, उसे जो शांति मिलती है, क्या वह वही है जिस शांति की मैं बात कर रहा हूं?

नहीं, वह शांति बिल्कुल वही नहीं है। कवि भी अपने काव्य के निर्माण में खुद को डूबा देता है; नृत्यकार भी नाचता है तो भूल जाता है; संगीतज्ञ भी संगीत में डूब जाता है, लेकिन यह डूबना स्वयं को जानना नहीं है। और यह शांति वस्तुतः शांति नहीं है बल्कि केवल जीवन के दुख का विस्मरण है। यह एक मूर्च्छा है, ज्ञान नहीं।
मनुष्य अपने दुख को, अपनी अशांति को दो प्रकार से छुटकारा पा सकता है।
एक तो प्रकार यह है कि वह अपनी अशांति को भूलने के लिए स्वयं को कहीं डूबा दे, कहीं तन्मय कर दे, कहीं लग जाए। इस तरह अशांति भूल जाती है मिटती नहीं। फॉरगेटफुलनेस, भूल जाना मिटना नहीं है। किसी काम में आदमी डूब जाए तो भूल जाता है। अगर बहुत जोर से डूब जाए तो बिल्कुल भूल जाता है। लेकिन भूल जाना मिट जाना नहीं है। काम एक नशे का काम करता है, इंटाक्सिकेंट का काम करता है। मूर्च्छा ला देता है।
एक छोटी सी घटना सुनाऊं। उससे मेरी बात समझ में सके।
एक नवाब के द्वार पर एक वीणावादक आया। उस वीणा बजाने वाले ने कहा कि मैं बजाऊंगा, लेकिन एक शर्त है। सुनने वाला कोई आदमी अगर सिर हिलाएगा तो मैं नहीं बजाऊंगा। वीणा बजाऊंगा, लेकिन कोई सिर न हिले।
वह नवाब पागल था, जैसे कि अक्सर नवाब पागल होते हैं। वह नवाब भी पागल था, उसने कहा कि बेफिकर रहो। अगर कोई सिर हिला तो गर्दन अलग करवा देंगे उसकी, तुम चिंता मत करो। और गांव में डुंडी पीट दी गई कि जो सांझ को वीणा को सुनने आएं वे थोड़ा सम्हल कर आएं, किसी ने अगर सिर हिलाया तो सिर अलग करवा दिया जाएगा। हजारों लोग आते सुनने उस संगीतज्ञ को, लेकिन थोड़े से ही लोग आए, दो-चार सौ लोग आए। वे ही लोग आए जिनको यह ख्याल था कि वे इतने संयमी हैं कि अपने सिर को सम्हाल कर बैठे रहेंगे। पहले ही घोषणा कर दी गई कि कोई सिर न हिले, नहीं तो पीछे पछताने का मौका नहीं है।
वीणा बजनी शुरू हुई, कुशल था वह संगीतज्ञ, हाथों में उसके जादू था। कोई आधी घड़ी बीती होगी, लोग बिल्कुल सधे हुए मूर्तियों की भांति बैठे रहे, लेकिन घड़ी बीतते-बीतते दस-पांच सिर हिलने शुरू हो गए।
नवाब ने आदमी रख छोड़े थे कि निशान लगा लेना कौन-कौन आदमी हिल रहे हैं, बाद में गर्दन कटवा देंगे।
आधी रात गए वीणा बंद हुई, बीस आदमी पकड़ कर सामने खड़े कर दिए गए। नवाब
ने कहा कि इनकी गर्दन अलग कर दें।
संगीतज्ञ ने कहाः नहीं, कल केवल यही लोग सुनने के लिए आ सकें और कोई नहीं आ सकेगा।
नवाब ने पूछाः मतलब क्या है? और उन लोगों से पूछा कि तुम कितने पागल हो, गर्दन कटेगी यह जानते हुए तुमने सिर हिलाया?
उन्होंने कहा कि नहीं, हमने सिर नहीं हिलाया। जब तक हम मौजूद थे हमने सिर न हिलने दिया, लेकिन एक घड़ी आई कि हम गैर-मौजूद हो गए। एक घड़ी आई कि हम थे ही नहीं। फिर हमें पता नहीं है कि सिर कैसे हिला। हम होश में नहीं थे जब सिर हिला, हम बेहोश थे। इसलिए जिम्मा हम पर नहीं है। हम तो जब तक होश में थे हमने सिर नहीं हिलाया, सम्हाले रहे। फिर एक घड़ी आई कि हम बेहोश हो गए और

सिर हिला। हमें उस घड़ी का फिर कोई पता नहीं है कि कब सिर हिला, वह हमने नहीं हिलाया था, वह हिला होगा।
संगीतज्ञ ने कहा कि कल ये ही लोग सुनने को आएं। यही लोग डूब सकते हैं। लेकिन यह डूबने से जो शांति मिलती है, यह जो मूर्च्छा है, यह एक तरह की हिप्नोसिस है, एक तरह का सम्मोहन है। जो संगीत के स्वरलहरी में उन पर पैदा हो गया और वे अपने को भूल गए। जितनी देर वे अपने को भूले रहे बड़ी शांति में रहे होंगे, क्योंकि उनकी चिंताएं, दिन भर के दुख और पीड़ाएं सब भूल गए। लेकिन जब मूर्च्छा के बारह आए होंगे, सब दुख वापस लौट आएंगे। वे तो मौजूद थे भीतर, केवल हम बेहोश हो गए थे। संगीत से जो सुख मिलता है वह सुख विस्मरण का सुख है, वह सुख नहीं है। शराब से जो सुख मिलता है वह भी इसी तरह का सुख है।
अभी अमरीका में मैस्कलीन और लिसर्जिक एसिड का प्रयोग चलना शुरू हुआ।
ये नये बेहोश होने के नये इंजेक्शन, इनकी जोर से हवा है अमरीका में। लिसर्जिक एसिड या मैस्कलीन का एक इंजेक्शन लेने पर छह घंटे के लिए आदमी उसी अवस्था में पहुंच जाता है जिसमें वैज्ञानिक पहुंचते हैं, कवि पहुंचते हैं, संगीतज्ञ पहुंचते हैं, सब भूल जाता है, एकदम मस्त हो जाता है, मग्न हो जाता है। दुनिया में इतने दिनों से शराब, गांजा, अफीम और भांग अकारण नहीं पी जा रही है। पीने का कुछ कारण है। किन्हीं चीजों को भूलने में उनसे सहारा मिलता है।
सेक्स का इतना आकर्षण है। अकारण नहीं है। आदमी अपने को भूल पाता है, डूबा पाता है। लेकिन सेक्स से जो शांति मिलती है और शराब से जो शांति मिलती है वह वह शांति नहीं है जिसकी मैं बात कर रहा हूं। वैज्ञानिक भी अपने को डूबा लेता है अपने काम में। काम इतना बड़ा होता है इतना तल्लीन हो जाता है अपने काम में कि उसे जीवन की चिंताएं और दुख विस्मरण हो जाते हैं। लेकिन इससे कोई आत्मज्ञान नहीं होता और न आनंद उपलब्ध होता है। बल्कि सच यह है कि इस भांति डूबने वाले आदमी ने तो अपने द्वार ही बंद कर लिए उसे तो कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकेगा। क्यों? जो दुख को भूल गया उसे दुख को मिटाने का भी अब कोई कारण नहीं रहा।
आत्मिक खोज में दुख का बोध बहुत महत्वपूर्ण है। आपको अपने दुख और चिंता का जितना स्पष्ट बोध हो, जितनी साफ-साफ अवेयरनेस हो, उतना अच्छा है। क्योंकि दुख का बोध, पीड़ा का बोध, चिंता का बोध आपके भीतर उस सजगता को पैदा करता है, जो कि सत्य तक और आनंद तक जाने का मार्ग बनती है। लेकिन भूल जाने से यह काम हल नहीं होता।
हम सभी लोग तो भूलने के छोटे-मोटे प्रयोग करते हैं। कोई अपने बच्चों में भूल जाता है, कोई अपनी पत्नी में। एक धन को कमाने वाला इतने जोर से धन कमाने में लगता है कि भूल जाता है धन कमाने में। वैज्ञानिक की ही बात थोड़े ही है, एक कंजूस को देखें, पैसा कमाने वाले को देखें, वह कैसा तल्लीन होकर पैसा कमाता है, सब भूल जाता है, बस पैसे ही गिनता है और डूबा रहता है दिन-रात। एक राजनीतिज्ञ को देखें जो पदों की दौड़ में पागल है, वह भी कितना भूला हुआ है, कितना डूबा हुआ है, कितना शांत मालूम पड़ता है जब उसे पद मिलते हैं और मिलते ही चले जाते हैं और वह दौड़ता चला जाता है।
नहीं, ये सब दौड़ें मनुष्य को आत्मशांति तक नहीं ले जातीं केवल जीवन के दुख भुलाने के उपाय हैं ये, एस्केप्स हैं। और एस्केप, पलायन किसी भी ढंग का हो सकता है, हजार ढंग का हो सकता है। एक आदमी मंदिर में बैठ कर भजन-कीर्तन करता है और अपने को भूल जाता है, वह भी पलायन कर रहा है, वह भी शांति को उपलब्ध नहीं होगा। एक आदमी राम-राम, राम-राम जपता है और अपने को भूल जाता है, वह भी नशा कर रहा है, वह भी शांति को उपलब्ध नहीं होगा।
शांति की उपलब्धि का पहला सूत्र हैः भूले नहीं, जागें। आत्म-विस्मरण नहीं, आत्म-स्मरण। फॉरगेटफुलनेस नहीं, सेल्फ-रिमेंबरिंग। स्मरण करें स्वयं का, भूलें नहीं स्वयं को। चाहे कितना ही पीड़ादायी हो यह स्मरण, चाहे कितना ही दुखदायी हो यह स्मरण, लेकिन इसका स्मरण करें, इसे जानें, इसे पहचानें, इससे भागे नहीं, इससे भूलें नहीं, इसे डुबाएं नहीं, इसे किसी तरह के नशे में छिपाएं नहीं, सब तरह के नशे तोड़ दें, सब तरह की मूर्च्छा तोड़

दें, सब तरह के सेल्फ-ेहिप्नोसिस तोड़ दें, और देखें जाग कर कि क्या है यह चिंता, क्या है यह दुख। जब दुख के प्रति पूरी तरह जागेंगे तो क्या होगा? एक बहुत अदभुत घटना घटती है जो आदमी दुख के प्रति पूरी तरह जागता है। वह घटना यह है कि जब हम दुख के प्रति पूरी तरह जाग जाते हैं तो हमें स्मरण होता है, स्पष्ट बोध होता है¬दुख अलग है और मैं अलग हूं। क्योंकि हम केवल उसी चीज के प्रति पूरी तरह जाग सकते हैं जो हमसे अलग हो। हम केवल उसके ही द्रष्टा बन सकते हैं, उसके आब्जर्वर हो सकते हैं जो हमसे अलग हो।
मैं आपको देख रहा हूं, मैं आपसे अलग हूं। मैं इस माइक तो देख रहा हूं, मैं इस माइक से अलग हूं। मैं इस शरीर को देख रहा हूं, मैं इस शरीर से अलग हो गया। क्योंकि देखने वाला उससे अलग हो जाता है जिसे देखता है। द्रष्टा दृश्य से अलग हो जाता है। अगर कोई अपने प्राणों में उतर कर अपने सारे दुख, सारी पीड़ा और सारी चिंता को पूरे रूप से देख ले, तत्क्षण वह पाएगा एक अदभुत खाई पैदा हो गई है वह अलग हो गया और दुख अलग हो गया। वह तादात्म्य टूट गया जहां मालूम पड़ता था मैं दुख हूं, उसे ज्ञात होगा कि मैं हूं और दुख है। और जैसे ही यह दिखाई पड़ जाएगा कि मैं हूं और दुख है, वह नाता टूट गया जो दुख देता था, वह संबंध टूट गया, वह आइडेंटिटी टूट गई। यह तो पहला आघात है दुख पर। और जैसे ही यह संबंध टूट गया, मैं अलग हो गया और दुख अलग हो गया, फिर दुख कहां है। फिर दुख गया। फिर दुख विलीन हो जाएगा। दुख है इसलिए कि मैं दुख से अपने को जोड़े हुए हूं। कोई आंतरिक लगाव जुड़ा हुआ है, इसलिए दुख है। मैं भूला दूं दुख को इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लेकिन अगर मैं दुख के प्रति पूरी तरह जाग जाऊं तो दुख से मुक्ति हो सकती है।
इसलिए कोई वैज्ञानिक, कोई कवि, कोई संगीतज्ञ इस भ्रम में न रहे कि उसकी शांति वही शांति है जिसकी धर्म बात करते हैं। नहीं, वह शांति वही नहीं है। वह तो शांति न होकर शांति का धोखा है। लेकिन यह है। यह चलता रहा है। यह आज भी चल रहा है।
इसलिए वैज्ञानिक अपने आम जीवन में उतना ही दुखी होता है जितने आप दुखी हैं। कवि अपने आम जीवन में उतना ही दुखी होता है। बातें तो कविता में करता है बहुत-बहुत गहरी, लेकिन जिंदगी में जाकर देखेंगे तो वही सब दुख उसे भी पीड़ा देते हैं जो आपको देते हैं।
संगीतज्ञ डूब जाता है अपने सितार के बजाने में या और किसी के बजाने में, लेकिन बाकी जिंदगी में दुखी का दुखी बना रहता है। वैज्ञानिक भी वैसे ही दुखी बना रहता है। यह हो सकता है कि उसकी तंद्रा इतनी गहरी हो, वह इतने काम में डूबा हो कि हमें पता भी न चलता हो कि वह दुख में है। वह एक तरह की मूर्च्छा में जी रहा है। इस मूर्च्छा के फायदे हैं। अगर मूर्च्छा न हो तो संगीत पैदा न हो, विज्ञान पैदा न हो। और कुछ पैदा न हो। इतना पैदा हुआ है यह सब इस मूर्च्छा से। जरूर इस मूर्च्छा के कुछ फायदे हैं। लेकिन यह मूर्च्छा शांति नहीं है। और यह भी मैं आपसे कह दूं, मनुष्य जब मूर्च्छा से विज्ञान को जन्म दे पाया है, संगीत को, गणित को, तो अगर कहीं किसी दिन मनुष्य जागरूक हुआ, तो वह शायद सुपर-साइंस को जन्म दे पाएगा जो कि परा- विज्ञान होगा।
यह मूर्च्छा से ऐसा विज्ञान पैदा हो गया तो अमूर्च्छित चित्त से कैसा विज्ञान पैदा होगा? अभी हम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। क्योंकि अमूर्च्छित मनुष्य ने अभी विज्ञान पर कोई प्रयोग नहीं किए। और यह भी मैं आपसे कह दूं, चूंकि यह मूर्च्छा से विज्ञान पैदा होता है, इसलिए यह विज्ञान खतरनाक भी सिद्ध हो रहा है। यह मूर्च्छा का विज्ञान है जो हाइड्रोजन बम तक ले आया, और विनाश तक ले आया। क्योंकि जो वैज्ञानिक डूब कर काम कर रहा है उसे इससे कोई प्रयोजन नहीं है कि वह काम कहां ले जा रहा है और क्या हो रहा है। उसको केवल इससे प्रयोजन है कि वह भूला रहता है अपने काम में। उससे हाइडरेजन बम बन रहा है, कि आदमी मरेंगे, कि जमीन डुबेगी, उसे कुछ मतलब नहीं, वह अपना काम रहा है, वह डूबा हुआ है। उसको डूबने में सहारा मिल रहा है, फिर क्या परिणाम होगा यह नहीं कहा जा सकता। लेकिन अगर वैज्ञानिक जागरूक हो, तो वह इस बात से निश्चिंत नहीं हो सकता कि वह जो कर रहा है उसके क्या परिणाम होंगे।

विज्ञान मूर्च्छित हाथों से विकसित हुआ है। अभी हमारा सभी कुछ मूर्च्छित हाथों से विकसित हुआ है। हमारी पेंटिंग, हमारी कविताएं मूर्च्छित हाथों से बनी हैं।
इसलिए दुनिया में एक तरह का मूर्च्छित विकास हुआ है। अब तक सचेतन, कांशस एवलूशन नहीं हुई। कभी हो सकती है। और यह जो मैं कह रहा हूं कि अगर सचेत, पूरी तरह से सावधान, होश से भरा हुआ मनुष्य कुछ करेगा, तो उसके परिणाम बहुत भिन्न होंगे।
यह तो मैंने पहली बात कही तीसरी प्रश्न के उत्तर में।
दूसरी बात पूछी है कि जो बात मैं कह रहा हूं यह तो ठीक मालूम होती है, लेकिन कितने लोग इसको कर पाएंगे?
शायद थोड़े से लोग कर पाएंगे। सभी लोग तो नहीं कर पाएंगे। मैं निवेदन करता हूं कि मैं जो बात कह रहा हूं वह चूजन फ्यू के लिए नहीं है, कुछ चुने हुए लोगों के लिए नहीं है। अभी तक हमने हर तरह के भ्रम पाले हैं। और हमने हर चीज में कैटेगेरीज की हैं और वर्ग बनाए हैं। हमने गरीब और अमीर बनाए हैं। हमने समझदार और नासमझ बनाएं हैं। हमने शूद्र और ब्राह्मण बनाएं हैं। हमने हर तरह के वर्ग किए हैं। हम परमात्मा के संबंध में भी वर्ग करना चाहते हैं कि कुछ लोग पा सकेंगे, कुछ लोग नहीं पा सकेंगे।
लेकिन मैं आपसे निवेदन करता हूं, दुनिया की सब चीजों को पाने में वर्ग
हो सकते हैं परमात्मा को पाने में वर्ग नहीं हो सकते। कम से कम एकाध चीज तो रहने दो जिसे सब पा सकें। कम से कम परमात्मा को तो बच जाने दो। बड़े महल सब लोग नहीं पा सकते, और राष्टपति सभी लोग नहीं हो सकते, और सभी लोग चांद की यात्रा भी नहीं कर सकते, सभी लोग कवि नहीं हो सकते, सभी लोग वैज्ञानिक हो सकते। बिल्कुल ठीक है। लेकिन सभी लोग परमात्मा को पा सकते हैं।
क्यों? क्योंकि वैज्ञानिक होना एक विशिष्ट प्रतिभा की बात है, कवि होना एक विशिष्ट प्रतिभा की बात है, लेकिन परमात्मा को पाना स्वरूप है हम सबका, विशिष्ट प्रतिभा की बात नहीं। एक आदमी गणितज्ञ होता है, यह एक कुशलता की बात है, एक टेलेंट की बात है। लेकिन हर आदमी श्वासें लेता है और हर आदमी प्रेम करता है, यह कोई टेलेंट की बात नहीं है। हर आदमी प्रेम करता है। नहीं तो एक वक्त आएगा कि सभी लोग प्रेम नहीं कर सकते, कुछ थोड़े से लोग प्रेम करेंगे। प्रेम किसी विशिष्ट प्रतिभा की बात नहीं, सभी के प्राणों का स्वर है। सभी प्रेम करते हैं। बड़े कवि भी, बड़े वैज्ञानिक भी, छोटा सा गांव का चमार भी। और मेरी समझ यह है कि बड़े वैज्ञानिक गांव के चमार से कोई अच्छी तरह प्रेम कर लेते हों इसका कोई जरूरी नहीं है। प्रेम करना जैसे सबके लिए संभव है, सबके प्राणों की छिपी हुई क्षमता है, वैसे ही मेरी दृष्टि में परमात्मा और भी गहरी क्षमता है और सबकी क्षमता है। परमात्मा सबका स्वरूप है। परमात्मा कोई टेलेंटेट आदमी का सवाल नहीं है, किसी जीनियस का सवाल नहीं है, किसी मेधावी का सवाल नहीं है, परमात्मा सबका स्वभाव है, सबका स्वरूप है। जैसे सब सांस लेते हैं और सब जीवित हैं। परमात्मा जीवन है।
इसलिए इसमें कोई कैटेगेरीज नहीं चलेंगी। इसमें कोई वर्ग नहीं चलेंगे, कोई क्लासेस नहीं चलेंगी कि कुछ लोग पा सकते हैं कुछ लोग नहीं। कौन लोग पा सकते हैं? क्या गणित बहुत अच्छा कर लेते हैं इससे परमात्मा को पा लेंगे? क्या तुकबंदी कर लेते हैं और कविता लिख लेते हैं और दिल्ली में रहने लगे हैं और राष्टकवि हो गए हैं इसलिए कोई, इसलिए कोई परमात्मा को पा लेंगे? या एकाध-दो किताबें लिख लीं इसलिए परमात्मा को पा लेंगे? या दुकान बहुत अच्छी चलाते हैं इसलिए परमात्मा को पा लेंगे? इन किस चीज से परमात्मा का संबंध है? इनसे तो किसी का कोई संबंध नहीं है।
मनुष्य के भीतर जो विशिष्ट, विशिष्ट दिशाएं हैं उनसे परमात्मा का कोई संबंध नहीं है। मनुष्य के भीतर जो सबका स्वभाव है, परमात्मा से उसका संबंध है। तो एक आदमी कवि हो सकता है, दूसरा गणितज्ञ हो सकता है। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, दोनों जीवित हैं, दोनों के भीतर जीवन लहरें ले रहा है। वह जो लहरें लेता हुआ जीवन है वही परमात्मा है।

तो मैं यह निवेदन करता हूं कि परमात्मा तक पहुंचने के लिए कोई वर्ग नहीं है। और यह वर्गों की धारणा, यह शूद्र और ब्राह्मण की धारणा इतनी मूर्खतापूर्ण साबित हुई जिसका कोई हिसाब नहीं है। कोई ब्राह्मण नहीं है, कोई शूद्र नहीं है परमात्मा की तरह जाने के लिए। कोई अधिकारी नहीं है, कोई अनधिकारी नहीं है। और कोई पात्र नहीं है और कोई अपात्र नहीं है। तो बड़ी मुश्किल होगी। आप कहेंगे कि जब सभी पा सकते हैं तो सभी पा क्यों नहीं लेते? यह बिल्कुल दूसरी बात है। सभी बीज वृक्ष हो सकते हैं, लेकिन जरूरी नहीं है कि सभी बीज वृक्ष हो जाएं। सभी बीज वृक्ष हो सकते हैं, लेकिन जरूरी नहीं है कि सभी बीज वृक्ष हो जाएं। लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं होता कि कुछ बीज वृक्ष हो सकते हैं और कुछ नहीं हो सकते। परमात्मा को तो सभी पा सकते हैं। क्योंकि सभी पाए हुए हैं। लेकिन इसका बोध सभी को होगा या नहीं यह प्रत्येक पर खुद निर्भर है, यह किसी दूसरे पर निर्भर नहीं है।
आपका जीवन अनुभव, आपके जीवन की अनुभूति, आपके जीवन की प्यास, आपकी आकांक्षा और अभीप्सा आपको परमात्मा तक ले जा सकती है। कोई बाधा नहीं है। कोई विशिष्ट प्रतिभा की जरूरत नहीं है, किसी युनिवर्सिटी से किसी प्रमाणपत्र की कोई जरूरत नहीं है। कोई पंडित होने की जरूरत नहीं है और कोई शास्त्र आपको कंठस्थ हो इसकी जरूरत नहीं है। और बीच में किसी पादरी- पुरोहित की जरूरत नहीं है जो कि दलाली का काम करे और आपको परमात्मा तक पहुंचा दे। परमात्मा तक पहुंचने के लिए आपकी प्यास और अपनी अभीप्सा की बात है। और मुझे ऐसा दिखाई पड़ता है कि हर मनुष्य के भीतर परमात्मा को पाने की प्यास भी है। हर मनुष्य के भीतर। ऐसा मनुष्य खोजना कठिन है जो आनंद को न पाना चाहता हो। ऐसा मनुष्य खोजना कठिन है जो शांति को न पाना चाहता हो। ऐसा मनुष्य खोजना कठिन है जो जीवन में आलोक को और प्रकाश को न पाना चाहता हो। सभी लोग पाना चाहते हैं। और सभी लोग पाने का प्रयास भी करते हैं। लेकिन इस पाने के प्रयास में बहुत सी भ्रांतियां हैं, बहुत सी भूले हैं। इस पाने के प्रयास में सम्यक विवेक का प्रयोग नहीं है, बुद्धि का प्रयोग नहीं है। और अब तक हजारों साल से यह सिखाया गया है कि इसे पाने के लिए किसी विवेक के प्रयोग की जरूरत नहीं है विश्वास कर लेने की जरूरत है। विश्वास के कारण अधिक लोग रुके हुए हैं और परमात्मा को नहीं पा सके। क्योंकि विश्वास कर देता है अंधा, और परमात्मा को पाने के लिए चाहिए आंखें। और विश्वास कर देता है जड़, और परमात्मा को पाने के लिए चाहिए एक चैतन्य। इसलिए सारी गड़बड़ है।
विश्वास ने मनुष्य को परमात्मा तक जाने से रोका है। विश्वास और श्रद्धाओं ने मनुष्य को रोका है। बिलीफस ने रोका है। अगर मनुष्य थोड़ा विश्वासों के अंधेपन से मुक्त हो, और हो सकता है प्रत्येक। थोड़ा विवेक को जाग्रत करे। और कर सकता है प्रत्येक। तो कोई कारण नहीं है कि कोई मनुष्य परमात्मा से वंचित रह जाए। कोई कारण नहीं है। जितना यह सरल है कि बीज से अंकुर निकलता है और पौधा बन जाता है, उतना ही सरल यह भी है कि मनुष्य परमात्मा को अनुभव कर ले।
क्राइस्ट कहा करते थे, एक किसान ने अपने खेत में जाकर बीज फेंके। कुछ उसने मुट्ठियों से बीज फेंके। जेरुसलम में उसी तरह बीज बोए जाते थे, मुट्ठियों से बीज फेंक देते थे। कुछ बीज सड़क के ऊपर पड़ गए। सड़क तो चलती हुई थी, बीजों पर निरंतर पैर पड़ते रहे, उनमें से कभी अंकुर नहीं निकल सके। कुछ बीच सड़क के किनारे पत्थरों पर पड़ गए। उनमें से अंकुर तो निकले, लेकिन पत्थरों में जड़ें पहुंचनी मुश्किल थी, इसलिए अंकुर निकले और कुम्हला गए और सुख गए। कुछ बीज खेत की भूमि पर पड़े, उनमें से अंकुर निकले, उनमें से पौधे आए और उन बीजों में फल भी लगे। वे सभी बीज एक जैसे थे। वे सभी बीजों की क्षमता थी कि वे पौधे बन जाते और उनमें फूल आते और फल आते। लेकिन कुछ बीज सड़क पर पड़ गए हैं और कुछ बीज पत्थरों पर। हम सारे लोग भी एक जैसे बीज हैं। बुद्ध और महावीर में, कृष्ण और क्राइस्ट में, मोहम्मद में और मो.जे.ज में हमसे भिन्न कोई बीज नहीं है, ठीक वही बीज है जो हम हैं। कोई फर्क नहीं है। लेकिन हम अपनी ही भूलों से अगर अपने बीज को सड़क के किनारे डाल देंगे और पत्थरों पर फेंक देंगे, इसमें कसूर किसी और का नहीं है। और हम सारे लोग ऐसी

जगह अपने जीवन को डालते हैं, फेंकते हैं तो उसमें से अंकुर नहीं निकल पाते।
मैं कल सुबह इस संबंध में बात आपसे करूंगा कि कहां ठीक भूमि है और कहां हमारे बीज ठीक से पड़ें, तो अंकुरित हो सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य की पोटेंशिएलिटी है, बीजात्मक संभावना है कि वह परमात्मा हो सके। इसलिए इतना निवेदन करना चाहता हूं कि कम से कम परमात्मा के संबंध में क्लासेस का सवाल पैदा न करें। यह नहीं है, बिल्कुल झूठा है। कोई आदमी विशेष रूप से अधिकारी नहीं है परमात्मा को पाने का। सभी लोग समान रूप से अधिकारी हैं। लेकिन सभी लोग उस तरफ आकांक्षा करें, प्यास करें, ठीक भूमि दें चित्त को, तो, तो जरूर, जरूर वह हो सकता है।
मैंने जो ये कही हैं बातें, ये सबके लिए हैं। इनमें से कोई विशेष लोगों के लिए नहीं है। हां, यह हो सकता है कि मेरी बातें आपके मन की धारणाओं से मेल न खाती हों, इसलिए आपको ऐसा लगता हो कि ये हमारे काम की बातें नहीं क्योंकि हमारी धारणाओं से मेल नहीं खातीं। इस कारण से ऐसा लग सकता है कि ये बातें किन्हीं कुछ लोगों के लिए है हमारे काम की नहीं हैं। लेकिन मैं निवेदन करूंगा, अपनी धारणाओं पर फिर से पुनर्विचार करें,
और मैंने जो कहा है उस पर भी विचार करें। मान लेने का कोई सवाल नहीं है। पिछली धारणाएं भी आपने मान रखी हैं, वह गलत किया है। अगर उन पर विचार किया होता तो आपने कभी उनको माना न होता। अब वे आपकी प्रिज्युडिस बन गई हैं, पक्षपात बन गई हैं। उनको छोड़ने में प्राण को धक्का लगता है। जैसे हम किसी आदमी के कपड़े उतार दें, तो वह घबड़ाता है। लेकिन कपड़े उतारने में कोई इतना ज्यादा नहीं घबड़ाएगा, जितना उसकी धारणाएं खींचो तो वह घबड़ाता है। वे हमारी भीतरी वस्त्र बन गई हैं।
हमने अपने भीतरी नंगेपन को उन धारणाओं में छिपा लिया है। इसलिए कोई खींचता है तो घबड़ाहट होती है। तब एक ही सस्ती तरकीब होती है और वह तरकीब यह है कि हम आंख बंद कर लें, कहें कि ये हमारे काम की बातें नहीं हैं। ये होंगी किन्हीं और लोगों के काम कीं। ये अपने बस की बातें नहीं हैं। हम तो अपना भजन-कीर्तन करेंगे, उससे कुछ रास्ता निकले तो निकले।
नहीं, कोई बातें किसी विशिष्ट के लिए नहीं हैं। अगर ईमानदारी हो और विचार हो तो अपनी धारणाओं को फिर से रि-कंसीडर करें, फिर से सोचें। और यह मैं कहता नहीं हूं कि मैंने जो कहा है उसे मान लें, उसको भी सोचें। और उस सोच-विचार से जो ठीक है वह निकलेगा। और वह ठीक सबके लिए है। लेकिन आप उसको निकालना ही न चाहें तो बात दूसरी है। कोई आदमी आंख बंद किए बैठा रहे और सूरज को देखना ही न चाहे तो बात दूसरी है, और कहे कि होगा सूरज कुछ लोगों के लिए सबके लिए नहीं है।
लेकिन मैं निवेदन करता हूं, सूरज उन सबके लिए है जो आंख खोलने को राजी हैं। और जो आंख बंद करने को राजी हैं उनके लिए नहीं है। इससे ज्यादा भिन्न इसमें और कोई बात नहीं है।
इसी प्रश्न में पूछा है कि जो नीति का मार्ग है, जो मॉरल कोड है, जो हमारी नैतिकता है, मॉरेलिटी है, वही शायद सबके लिए सम्यक मार्ग है। तो मैं आपसे कहना चाहूंगा, कि मॉरेलिटी तो कोई मार्ग ही नहीं है। नीति तो कोई मार्ग ही नहीं है।
नीति मार्ग नहीं है। नीति मार्ग है इस तरह की बातें हजारों साल से प्रचलित हैं। और लोगों को यह भी ख्याल है कि नैतिक हुए बिना कोई धार्मिक नहीं हो सकता, नैतिक होगा तब धार्मिक होगा।
मैं आपसे कहना चाहूंगा, नैतिक होने से कोई कभी धार्मिक नहीं होता है। हां, कोई धार्मिक हो जाए तो जरूर नैतिक हो जाता है। इन दो बातों को ठीक से समझ लेना जरूरी होगा।
नीति से धर्म पैदा नहीं होता, धर्म से नीति पैदा होती है। नैतिकता से
तो एक तरह का पाखंड पैदा होता है धर्म पैदा नहीं होता। क्योंकि नैतिकता आचरण का परिवर्तन है, आत्मा का परिवर्तन नहीं है। और हमारी आत्मा तो होती है कुछ और आचरण हम बदल लेते हैं कुछ। प्राण तो कहते हैं चोरी करो और बुद्धि कहती है चोरी मत करो। भीतर से तो कोई कहता है कि यह करो, सुनी हुई नैतिकता

कहती है यह मत करो। मनुष्य एक द्वंद्व में टूट जाता है। भीतर उठता है कि असत्य बोलो, नैतिकता को ध्यान में रख कर सत्य बोलने की कोशिश करता है।
आप कहेंगे कि क्या यह जरूरी है कि ऐसा होता हो? हां, ऐसा ही होता है।
और बिल्कुल जरूरी है। नहीं तो सत्य बोलने की कोशिश ही न करनी पड़े। अगर असत्य न उठता हो तो सत्य बोलने की कोशिश का सवाल ही क्या है। अगर भीतर बेईमानी न उठती हो तो ईमानदार होने का सवाल ही क्या है। भीतर चोरी उठती है इसलिए बाहर से हम चोरी से अपने को रोकते हैं। और इस रोकने में क्या होता है, मनुष्य दो हिस्सों में टूट जाता है। भीतर चोर रह जाता है आचरण में अचोर हो जाता है। मनुष्य दो हिस्सों में टूट जाता है। आत्मा तो कमसिद बनी रहती है और आचरण शुद्ध खादी के वस्त्रों जैसा हो जाता है सफेद, धुला हुआ। यह आचरण बड़ा धोखा पैदा करता है। यह दूसरों को तो धोखा देता ही है इससे खुद को भी धोखा पैदा होता है। और यह धोखा पैदा होगा, क्योंकि जीवन का जो वास्तविक परिवर्तन है, आचरण तो परिधि है, केंद्र तो आत्मा है। अगर आत्मा परिवर्तित हो तो आचरण अपने आप बदल जाता है। लेकिन आचरण बदले लें तो आत्मा अपने आप नहीं बदलती। जीवन भर चोरी न करें, तो भी भीतर से चोरी समाप्त नहीं होती। और जीवन भर विनम्र बने रहें तो भी भीतर से अहंकार नहीं जाता है, वह मौजूद होता है भीतर। क्योंकि जीवन के परिवर्तन की जो ठीक विधि है वह यह नहीं है। जीवन के परिवर्तन की ठीक विधि यह है कि पहले आत्मा, केंद्र बदल जाए, तो फिर परिधि अपने आप बदल जाती है। नहीं तो हम किसी न किसी रूप में चीजों से चिपके रहते हैं वहीं के वहीं।
दो व्यक्ति पति और पत्नी जंगल से लौटते थे। वे दोनों बहुत साधु- चरित्र थे, बहुत नैतिक थे। न तो चोरी करते थे, न बेईमानी, न असत्य बोलते थे, न संपत्ति का संग्रह करते थे। लकड़ियां काट लाते थे जंगल से, बेच देते थे, जो मिलता था उसे खा लेते थे। सांझ जो चावल, गेहूं के दाने बच जाते थे उनको बांट देते थे, रात उनके पास कुछ भी नहीं होता था। दूसरे दिन सुबह फिर जंगल जाते और लकड़ी काट लाते। लेकिन एक बार सात दिन तक पानी गिरता रहा, और वे जंगल नहीं जा सके और सात दिन उपवास करना पड़ा। लेकिन उन्होंने किया। उन्होंने पड़ोसियों से मांगा नहीं। पड़ोसियों ने देना भी चाहा, तो वे लेने को राजी न हुए।
सात दिन बाद पानी खुला और वे जंगल गए। वे लकड़ियां काट कर लौटते थे।
पति आगे था पत्नी पीछे थी। कमजोर हो गए थे, सात दिन के भूखे थे, परेशान थे।
और फिर लकड़ियों को काटने का श्रम और बोझ। पति थोड़ा आगे पत्नी थोड़ी पीछे।
पति ने देखा कि राह के किनारे किसी राहगीर की सोने की अशर्फियों से भरी हुई थैली गिर गई है, कुछ अशर्फियां बाहर पड़ी हैं, कुछ थैली के भीतर हैं।
उसके मन में हुआ, मैंने तो स्वर्ण को जीत लिया है, मेरे मन में तो स्वर्ण के प्रति कोई कामना और वासना नहीं उठती। लेकिन स्त्री का क्या भरोसा। पुरुषों को आज तक स्त्रियों का भरोसा कभी भी नहीं रहा है। उसको भी नहीं था। इसलिए पुरुषों ने जो धर्म बनाएं हैं उनमें स्त्रियों को मोक्ष जाने की व्यवस्था नहीं की है। उनका कोई भरोसा नहीं है। स्त्रियां शास्त्र बनातीं तो शायद पुरुष का भरोसा उसमें नहीं होता, और पुरुष को स्वर्ग जाने की कोई व्यवस्था नहीं होती। लेकिन चूंकि सभी शास्त्र पुरुषों ने बनाएं हैं इसलिए स्त्रियों को कोई हक स्वर्ग वगैरह, मोक्ष वगैरह जाने का नहीं है।
उसने भी सोचा कि नहीं, यह स्त्री का क्या भरोसा। इसकी नैतिकता का कोई पक्का विश्वास नहीं है। स्त्री ही ठहरी, मन डांवाडोल हो सकता है। तो उसने उस थैली को सरका दिया गड्ढे में और मिट्टी डाल दी। पीछे से तब तक उसकी स्त्री भी आ गई, वह मिट्टी डाल ही रहा था। उसकी स्त्री ने पूछा कि क्या करते हैं? सत्य बोलने का नियम था। नैतिक आदमी था, झूठ बोल सकता नहीं था। तो बड़ी मुश्किल में पड़ गया। बताना पड़ा उसे कि ऐसा-ऐसा हुआ, यहां थैली पड़ी थी अशर्फियों से भरी, मेरे मन में हुआ कि मैंने तो स्वर्ण को जीत लिया लेकिन मेरी स्त्री का मन न डोल जाए। इसलिए मैंने उस स्वर्ण की थैली को गड्ढे में डाल कर मिट्टी से ढंक दिया है।

उसकी स्त्री बोलीः मैं बहुत हैरान हूं, तुम्हें अभी स्वर्ण दिखाई पड़ता है? और अभी तुम्हें मिट्टी पर मिट्टी डालते हुए शर्म नहीं आती? तुम्हें अभी स्वर्ण दिखाई पड़ता है? और मिट्टी पर मिट्टी डालते हुए शर्म नहीं आती?
यह स्त्री धार्मिक है और वह पुरुष नैतिक है। उसने अपने आचरण को तो ठोंक-पीट कर बदल लिया है, लेकिन उसकी आत्मा में वही सब वासनाएं मौजूद हैं स्वर्ण के प्रति। स्त्री पर तो वह प्रोजेक्ट कर रहा है। उसके भीतर वह मौजूद है। स्त्री का तो बहाना ले रहा है, उस पर ढाल रहा है। लेकिन स्त्री धार्मिक है। वह यह कह रही है कि तुम्हें मिट्टी पर मिट्टी डालते हुए शर्म नहीं आती। जब आत्मा से कोई परिवर्तन होता है तो सोना छोड़ना नहीं पड़ता, सोना मिट्टी हो जाता है। और जब नैतिक परिवर्तन होता है तो सोना छोड़ना पड़ता है, सोना मिट्टी नहीं होता।

तो चाहे सोने को पकड़ो और चाहे छोड़ो, ये दोनों हालत में कोई बहुत बुनियादी फर्क नहीं है। लेकिन जिस दिन सोना मिट्टी ही हो जाए, उसी दिन कोई फर्क है। और सोना उसी दिन मिट्टी होगा जिस दिन आत्मा का दर्शन हो जाए उसके पहले नहीं। जिसको अपना शरीर ही दिखाई पड़ रहा है उसे सोना मिट्टी कभी नहीं हो सकता। वह चाहे छोड़े और चाहे इकट्ठा करे। जिसने अभी अपने शरीर के पार नहीं देखा है उसे सोना मिट्टी नहीं हो सकता। जो अपने शरीर के पार देखने में समर्थ हो जाता है उसे शरीर मिट्टी हो जाता है। और शरीर मिट्टी हो जाता है इसलिए शरीर की दुनिया का सब कुछ मिट्टी हो जाता है। उसमें सोना भी मिट्टी हो जाता है। तब छोड़ना नहीं पड़ता।
धार्मिक चित्त चीजों को छोड़ता नहीं है। नैतिक चित्त छोड़ता है। और यह बड़े मजे की बात है जिस चीज को आप छोड़ते हैं उससे आप हमेशा कि लिए बंध जाते हैं, उससे कभी मुक्त नहीं होते। छोड़ कर देख लें कोई चीज, उससे आप बंध जाएंगे। क्योंकि छोड़ने का मतलब यह है कि भीतर रस था, जबरदस्ती धक्का दिया और छोड़ दिया, रस मौजूद है। धार्मिक चित्त से चीजें छूटती हैं, छोड़ी नहीं जातीं। जैसे पके पत्ते गिर जाते हैं वृक्ष से, वैसे धार्मिक चित्त से कुछ चीजें गिर जाती हैं, झड़ जाती हैं। उन्हें कोई छोड़ता नहीं है। धार्मिक व्यक्ति असत्य बोलना छोड़ता नहीं है असमर्थ हो जाता है असत्य बोलने में। नैतिक व्यक्ति समर्थ होता है असत्य बोलने में, लेकिन असत्य बोलना छोड़ता है। इससे एक द्वंद्व उसके भीतर पैदा होता है।
नैतिक व्यक्ति तो द्वंद्वग्रस्त व्यक्ति है। नैतिक व्यक्ति धार्मिक व्यक्ति नहीं है। तो क्या मैं यह कह रहा हूं कि आप अनैतिक हो जाएं? नहीं, मैं आपसे यह कह रहा हूं कि नैतिक होने से आप इस भूल में मत पड़ जाना कि आप धार्मिक हो गए हैं। नैतिक हो जाने से इस भूल में मत पड़ जाना कि आप धार्मिक हो गए हैं। धार्मिक होना आयाम ही दूसरा है, दिशा ही दूसरी है। वह बात ही और है। वह सुगंध और है। वह प्रकाश और है। नैतिक मनुष्य को न तो कोई प्रकाश मिलता है, न कोई सुगंध और न कुछ। बल्कि नैतिक मनुष्य का सारा रस अहंकार का रस होता है। जैसे हम अच्छे-अच्छे वस्त्र पहन कर शानदार दिखाई पड़ने लगते हैं, हममें जो बहुत चालाक हैं वे अच्छा आचरण करके बहुत शानदार हो जाते हैं। उनका अहंकार तृप्त होता है इस बात से कि मैं झूठ नहीं बोलता, मैं चोर नहीं हूं, मैं बेईमान नहीं हूं। मैं बेईमान हो सकता हूं? तुम होओगे बेईमान, सारी दुनिया होगी बेईमान, लेकिन मैं? मैं सात्विक पुरुष और नैतिक पुरुष, मैं बेईमान हो सकता हूं, चोर हो सकता हूं। तो यह नैतिक पुरुष तो ईगोइस्ट होता है। और नैतिक पुरुष से ज्यादा अहंकारी आदमी खोजना मुश्किल है। और इसीलिए नैतिक पुरुष दूसरे की अनीति में हमेशा झांकता रहता है। देखता रहता है कि कौन-कौन चोरी कर रहा है। क्योंकि इसी में उसे रस होता है कि मैं चोरी नहीं करता हूं। कौन-कौन चोरी करता है। नैतिक पुरुष दूसरों की दीवाल में छेद करके झांकता रहता है कि दूसरे लोग अपने घरों में क्या कर रहे हैं। नैतिक व्यक्ति निंदक होता है हमेशा दूसरों का। क्योंकि उसका सारा रस ही इस बात में है कि वह नैतिक है और दूसरे लोग नैतिक नहीं हैं।

इसलिए जो कौम नीति के चक्कर में पड़ जाती है वह निंदक हो जाती है। हम अपने ही मुल्क में इस बात को भलीभांति जानते हैं। हमारे मुल्क जैसे निंदक लोग कहां खोजने से मिलेंगे। और हमारे जैसे मुल्क के लोग नीति के प्रेमी भी और कहां मिलेंगे। दिन-रात सुबह से शाम तक नीति की चर्चा करते हैं। और दिन-रात सुबह से शाम तक दूसरों की निंदा करते हैं और दूसरों के वस्त्र उघाड़ कर देखते हैं और दूसरों की दीवालों में झांकते हैं। क्यों? यह अनिवार्य है। क्योंकि नैतिक पुरुष का एक ही मजा है कि मैं भला आदमी हूं। और यह भलापन उतना ही बड़ा हो जाता है जितने दूसरे लोग बुरे सिद्ध हो जाते हैं। इसलिए हर नैतिक आदमी दूसरे को बुरा सिद्ध करने में लगा रहता है।
लेकिन धार्मिक व्यक्ति बहुत दूसरे तरह का व्यक्ति होता है। उसकी नैतिकता उसके धार्मिक स्वभाव से बहती है वैसे ही जैसे दीये से प्रकाश बहता है, फूल से सुगंध बहती है। उसे पता भी नहीं चलता कि मैं नैतिक हूं। और इसलिए धार्मिक व्यक्ति कभी किसी दूसरे की अनीति में झांक कर देखने की कोशिश भी नहीं करता। बल्कि अगर आप उसे दिखाना भी चाहें तो उसे दिखना मुश्किल हो जाएगा।
जापान में एक रात एक फकीर के घर में एक चोर घुसा। दरवाजा धकाया, सोचता
था बंद होगा, लेकिन फकीर का दरवाजा था, बंद किसके लिए किया जाता, वह खुला था, अटका हुआ था। चोर को अंदाज न था कि फकीर जगता होगा, कोई बारह बजे थे रात के। भीतर गया तो घबड़ा गया, फकीर बैठा था, कुछ चिट्ठी-पत्री लिखता था। उस फकीर ने कहाः आओ, आओ, इतनी रात को तो कोई कभी आता नहीं, कैसे आए मित्र? उस फकीर को ख्याल भी नहीं आया कि यह आदमी चोर हो सकता है या हत्यारा हो सकता है। आधी रात में दूसरे के घर में एकदम से घुस आया और हाथ में उसके छुरा था नंगा। लेकिन उस फकीर ने कहाः आओ, आओ मित्र, इतनी रात गए तो कोई भी नहीं आता, आओ, बैठो। उस फकीर की प्रेम भरी बात सुन कर उस चोर को लौट कर भागना भी आसान न हुआ। मजबूरी में उसे बैठ जाना पड़ा कुर्सी पर। उस फकीर ने पूछाः क्या इरादे हैं? कैसे आए? क्या चाहते हो? उस सीधे-सरल आदमी के सामने झूठ बोलना भी शायद आसान नहीं हुआ। उस चोर ने कहा कि मैं चोरी करने आया हूं। उस फकीर ने कहाः बड़े बेवक्त आए। एक-दो दिन पहले तो खबर करनी थी, तो मैं कुछ व्यवस्था करता कि तुम चोरी करके ले जाते। फकीर का झोपड़ा है। बड़ी दुविधा में तुमने मुझे डाल दिया। तो क्या तुम्हें दूं? हां, अच्छा ही हुआ, सुबह एक आदमी आया था और दस रुपये भेंट कर गया था, वे रखे हैं। लेकिन इतने से पैसे में... तुम इतनी दूर आए अंधेरी रात में और फकीर के झोपड़े पर आए, इसी से पता चलता है कि कितनी मुसीबत में और कितनी जरूरत में होओगे, दस रुपये से काम चल सकेगा? वह चोर तो बहुत घबड़ा गया। उसकी कुछ समझ में नहीं आया कि क्या करे। फकीर उठा उसने अपने आले से दस रुपये निकाले और उस चोर को दिए। और कहा कि अगर तुम्हारी मर्जी हो तो एक रुपया छोड़ जाओ, सुबह-सुबह कभी मुझे जरूरत पड़ जाती है। उस चोर ने एक रुपया छोड़ दिया और वह भागा निकल कर। फकीर चिल्लाया और उसने कहा कि रुको मित्र, दरवाजा तो कम से कम अटका दो और कम से कम मुझे धन्यवाद तो दे जाओ, क्योंकि दस रुपये जो तुमने लिए हैं वे तो कल चुक जाएंगे, लेकिन दिया हुआ धन्यवाद कभी पीछे भी काम पड़ सकता है, तो धन्यवाद देते चले जाओ।
वह चोर किसी तरह धन्यवाद देकर वहां से भागा। पीछे वह पकड़ा गया और मुकदमा चला। और भी बहुत सी चोरियां उसके ऊपर थीं। इस फकीर की चोरी का मामला भी था। इस फकीर को अदालत में बुलाया गया। वह चोर बहुत डरा हुआ था, कि अगर उस फकीर ने पहचान लिया तो उसका पहचानना ही काफी होगा, फिर किसी और प्रमाण की जरूरत न रह जाएगी। वह इतना प्रसिद्ध आदमी था।
मजिस्ट्रेट ने पूछा उस फकीर को कि आप पहचानते हैं इसे?
उसने कहाः भलीभांति पहचानता हूं, ये मेरे मित्र हैं। और कई बार तो ऐसा हुआ है कि आधी रात भी आ गए हैं। मित्र के घर ही कोई आधी रात को आता है, ऐसे किसके घर कौन जाता है। वह फकीर ने यह कहा, वह चोर तो घबड़ाया हुआ था। मजिस्ट्रेट ने पूछाः इसने कभी तुम्हारे यहां चोरी की?
उसने कहा कि नहीं, कभी नहीं। एक बार ये आए थे तो नौ रुपये मैंने इन्हें दिए थे, लेकिन उसके लिए इन्होंने धन्यवाद दे दिया था। बात खतम हो गई, उसका

कोई लेना-देना बाकी नहीं रहा। और ये आदमी बहुत भले हैं मैं आपसे कह दूं, क्योंकि मैंने इनसे कहा था एक रुपया छोड़ जाओ, तो ये छोड़ गए थे। और मैंने इनसे कहा, दरवाजा अटका दो, तो इन्होंने दरवाजा अटका दिया था। और मैंने इनसे कहा कि धन्यवाद दे दें, तो यह इतना सीधा आदमी कि इसने मुझे धन्यवाद भी दिया था। कौन कहता है यह चोर है?
यह एक धार्मिक व्यक्ति का अनुभव होता है जीवन के प्रति। उसे चोर दिखना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि उसके भीतर का चोर मर जाता है। उसे बेईमान दिखना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि उसके भीतर का बेईमान मर जाता है। उसे हत्यारा दिखना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि उसके भीतर का हत्यारा मर जाता है। नैतिक व्यक्ति के भीतर खूब घनीभूत हो जाता है हत्यारा, चोर और बेईमान, तो उसे हर एक के भीतर चोर, बेईमान दिखाई पड़ने लगता है।
इन्हीं नैतिक व्यक्तियों ने नरक की कल्पना की है कि चोरों को वहां जलवाएंगे कड़ाहियों में, बेईमानों को वहां आग में डालेंगे, कीड़े-मकोड़े सताएंगे, और नरक में अनंतकालीन कष्ट देंगे। ऐसे-ऐसे धर्म हैं जो कहते हैं कि अनंतकाल के लिए नरक में डाल दिए जाएंगे, अनंतकाल के लिए। कितने पाप किया होगा आखिर? एक आदमी जिंदगी में कितना पाप कर सकता है। दो-चार-दस साल की सजा भी ठीक हो सकती थी, अनंतकाल के लिए नरक में डाल देने वाले लोग कौन रहे होंगे? ये वे ही नैतिक लोग, जिन्होंने थोड़ी-बहुत ईमानदारी साध ली है तो बेईमानों से बदला लेना चाहते हैं उसका नरक में डाल कर। ये वे ही नैतिक लोग रस लेते हैं नरक में और खुद के लिए व्यवस्था कर ली उन्होंने स्वर्ग की। जहां ऐसी स्त्रियां हैं जो हमेशा जवान रहती है और कभी बूढ़ी नहीं होतीं। और जहां नदियों में शराब बहती है पानी नहीं बहता। यहां उन्होंने चुल्लू भर शराब छोड़ दी है तो वहां शराब के झरनों में नहाना चाहते हैं और पीते रहना चाहते हैं।
अपने लोगों ने व्यवस्था कर ली है नैतिक लोगों ने स्वर्ग की और अनैतिक लोगों के लिए नरक की। यह क्या धार्मिक लोगों ने किया होगा? क्या कोई धार्मिक चित्त का व्यक्ति यह कल्पना कर सकता है कि जिसने कभी भूल की है उसे नरक में डाल कर आग में सड़ाएंगे। और अगर ऐसा आदमी भी धार्मिक आदमी भी यह कल्पना कर सकता है तो फिर अधार्मिक आदमी और धार्मिक आदमी में भेद क्या है? तो मुझे दिखाई पड़ता है ये सारे स्वर्ग-नरक नैतिक व्यक्ति से पैदा हुए हैं, धार्मिक व्यक्ति से नहीं। यह भय और प्रलोभन नैतिक व्यक्ति ने पैदा किया धार्मिक व्यक्ति ने नहीं।
धर्म का संबंध नीति से कोई भी नहीं है इस भांति का जैसा हम सोचते हैं
कि नैतिक व्यक्ति धार्मिक हो जाएगा।
नहीं, लेकिन एक दूसरी तरह का संबंध जरूर है। धार्मिक व्यक्ति अनिवार्यतः नैतिक हो जाता है, लेकिन उसे नैतिक होने का बोध नहीं होता। यह सहज होता है। यह कोई कल्टिवेटिड, यह कोई आरोपित बात नहीं होती उसका नैतिक होना। वह नैतिक होने को मजबूर होता है। वह नैतिक होने को विवश होता है। वह नैतिक ही हो सकता है, अनैतिक होने का सवाल ही नहीं उठता। यह मुझे नहीं लगता कि कोई नैतिकता जीवन का पथ है। कभी भी नहीं है। नैतिकता तो कोई और प्रयोजन से व्यवस्था की गई है, उसका धर्म से कोई संबंध नहीं है। समाज की व्यवस्था है नैतिकता। समाज चाहता है चोरी न हो। समाज चाहता है जिनका धन है उनके पास सुरक्षित रहे। और जिनके पास धन है वे तो बहुत ही चिंतित हैं इस बात के लिए कि चोरी बिल्कुल न हो। इसलिए धनियों ने जितने भी ग्रंथ लिखवाए हैं सबमें लिखवा दिया है चोरी करना पाप है। लेकिन धनिकों के द्वारा लिखवाए गए ग्रंथों में कहीं भी नहीं लिखा है कि शोषण करना पाप है, एक्सप्लाइटेशन पाप है, यह कहीं भी नहीं लिखा है। आज तक एक भी धर्मग्रंथ ने यह नहीं लिखा कि एक्सप्लाइटेशन पाप है। चोरी पाप है यह तो समझ में आ गया, लेकिन इतना धन इकट्ठा कैसे हो जाता है एक आदमी के पास? यह पाप नहीं है? नहीं तो वे धर्मग्रंथ कहते हैं यह पिछले जन्मों के पुण्य से इकट्ठा हो गया।
गरीबी पिछले जन्म के पाप के कारण है, धन पिछले जन्म के पुण्य के कारण है। और चोरी, चोरी करना मत, क्योंकि चोरी हमेशा धनिक के विरोध में है, इसलिए चोरी पाप है। शोषण पाप नहीं है। और बड़ा मजा यह है कि अगर शोषण न हो तो

चोरी कैसे हो सकती है? जब तक दुनिया में शोषण है चोरी होगी। चोरी कैसे रुक सकती है। बड़े चोर धनपति हैं, छोटे चोर जेलों में बंद हैं। बिना चोरी के धन इकट्ठा होता ही नहीं। धन का संग्रह मात्र चोरी है, लेकिन धन के संग्रह को पाप नहीं कहते हैं धर्मग्रंथ। और नैतिक गुरु उसको पाप नहीं बताते हैं। क्योंकि सब नैतिक गुरु और सब धर्मशास्त्री जिन-जिन के धन पर जीते हैं, उनके धन की निंदा नहीं कर सकते, उसमें असमर्थ हैं। इसलिए एक शड्यंत्र चल रहा है दुनिया में हजारों साल से¬धनियों के बीच और धर्मगुरुओं के बीच एक साजिश चल रही है। और धर्मगुरु धनी की सुरक्षा कर रहा है हजारों साल से। और व्यवस्था दे रहा है उसको कि तेरे पुण्य का फल है यह। और चोरी के विरोध में है वह।
कनफ्यूशियस कुछ दिनों के लिए एक दफा मजिस्ट्रेट हो गया था। ज्यादा दिन नहीं रह सका। क्योंकि अच्छा आदमी मजिस्ट्रेट ज्यादा दिन नहीं रह सकता। मजिस्ट्रेट ज्यादा दिन वही रह सकता है जिसके पास कोई आत्मा न हो। कनफ्यूशियस मजिस्ट्रेट हो गया था, उसके पास आत्मा थी इसलिए पहले मुकदमे में ही सब गड़बड़ हो गई बात। पहला मुकदमा, दूसरा मुकदमा उसके सामने नहीं लाया जा सका, क्योंकि वह निकाल बाहर कर दिया गया। पहला मुकदमा ही गड़बड़ हो गया।
मुकदमा आ गया था, एक साहूकार, जो उसके गांव का सबसे बड़ा साहूकार था, उसकी चोरी हो गई थी। कनफ्यूशियस के सामने मुकदमा आया। चोर पकड़ लिया गया था। चोरी में गई चीजें पकड़ ली गई थीं। मामला साफ था। सजा देनी चाहिए थी। कनफ्यूशियस ने सजा दी। लेकिन दोनों को सजा दे दी, साहूकार को भी और चोर को भी। छह-छह महीने की सजा दे दी।
साहूकार चिल्लाया कि मजाक करते हैं, किस कानून में लिखा है यह? और यह क्या पागलपन है, मुझे सजा देते हैं? कनफ्यूशियस ने कहाः तुम न होते तो यह चोर भी नहीं हो सकता था। तुम हो इसलिए यह चोर है। चोर बाई-प्रोडक्ट है। चोर तुम्हारी पैदाइश है। यह तुम्हारा पुत्र है चोर। तुम बाप हो, यह बेटा है। तुमने सारे गांव की संपत्ति इकट्ठी कर ली, चोरी नहीं होगी तो क्या होगा? सारे गांव की संपत्ति इकट्ठी हो गई एक तरफ, सारा गांव कंगाल हो गया, चोरी नहीं होगी तो क्या होगा? इस चोर का कसूर ज्यादा नहीं है, पूरा गांव चोर हो जाएगा धीरे-धीरे।

और यह हुआ है। सारी दुनिया चोर हो गई चिल्लाते-चिल्लाते कि चोरी मत करो। यह होगा। क्योंकि चोरी की बुनियाद तोड़ने के लिए धर्मग्रंथ कुछ भी नहीं कहते, शोषण को तोड़ने के लिए कुछ भी नहीं कहते। इसलिए चोरी तो बढ़ती जाएगी, एक दिन सारी दुनिया चोर होगी। यह होना मजबूरी है।
कनफ्यूशियस को निकाल कर बाहर कर दिया गया कि यह मजिस्ट्रेट होने के काबिल नहीं, यह आदमी तो पागल है।
ढाई हजार साल हो गए कनफ्यूशियस को मरे हुए। अब तक भी हम उस स्थिति में नहीं आ पाए हैं कि कनफ्यूशियस को फिर से मजिस्ट्रेट बना दें। अब भी हम उस हालत में नहीं आ पाए। उस दिन की प्रतीक्षा करनी है अभी और जिस दिन कनफ्यूशियस को हम वापस मजिस्ट्रेट बना सकें कि अब फिर तुम मजिस्ट्रेट हो जाओ। लेकिन अभी भी आदमी उतनी समझ पर नहीं आ पाया।
समाज की व्यवस्था को जमाए रखने के लिए सारी नीति है। और समाज ने व्यवस्था कर रखी है। पुलिस, मजिस्ट्रेट, इनसे काम थोड़ा-बहुत चलता है, लेकिन कुछ चोर बहुत होशियार होते हैं, वे पुलिसवाले से भी बच जाते हैं, मजिस्ट्रेट से भी बच जाते हैं। क्योंकि आखिर मजिस्ट्रेट भी आदमी है, पुलिसवाला भी आदमी है। और आदमी की कमजोरियां हैं। वे बच जाते हैं। सबकी कमजोरियां हैं। तो जो बच जाते हैं उनके लिए क्या किया जाए? तो उनके लिए कांसियंस पैदा की है। कांस्टेबल बाहर, कांसियंस भीतर। पुलिसवाला बाहर और भीतर नैतिक बुद्धि। बचपन से पिला रहे हैं उनको चोरी मत करना, यह मत करना, वह मत करना, ताकि भीतर से भी एक घबड़ाहट पैदा हो जाए। बाहर के पुलिसवाले से बच जाएं तो भीतर के पुलिसवाले से न बच सकें। और ऊपर एक परमात्मा बिठाया

हुआ है सुप्रीम कांस्टेबल, सबसे बड़ा पुलिसवाला, हेड कांस्टेबल। उसका डर है कि वह नरक में डाल देगा, सड़ा देगा। यह कर देगा, वह कर देगा।
समाज अपनी व्यवस्था को जमाए रखने के लिए सारी नैतिकता का जाल खड़ा किया है। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं आपसे कह रहा हूं अनैतिक हो जाएं, मैं आपसे यह कह रहा हूं कि इस भांति आप नैतिक भी हो जाएं तो भी नैतिक नहीं होते, यह सब अनैतिकता है। अगर सच में ही नैतिक होना है तो धार्मिक होना पड़ेगा। धार्मिक हुए बिना कोई नैतिक नहीं होता। एक सामाजिक जाल का हिस्सा होता है, और समाज नैतिक व्यक्ति को आदर देता है, उसके अहंकार को तृप्ति देता है, उसी के बल पर उससे कुछ त्याग करवाता है। उसके अहंकार को फुसलाता है। उसको आदर देता है कि ये बहुत नैतिक पुरुष हैं, राष्टपतियों से जाकर उनको पद्मश्री और भारतरत्न की उपाधियां दिलवाता है कि ये बहुत अच्छे नैतिक पुरुष हैं, उसके अहंकार को, उसके अहंकार को पुष्टि दिलवाता है। ताकि उस अहंकार के प्रभाव में वह बेचारा थोड़ा त्याग करे, चोरी न करे, बेईमानी न करे। लेकिन यह व्यवस्था असफल हो गई है, क्योंकि वे सारे नैतिक पुरुष इस बात को अच्छी तरह समझ लेते हैं कि नैतिकता दिखलाओ इतना ही काफी है, होने की कोई खास जरूरत नहीं। और तब एक ढकोसला और एक झूठ पूरे समाज के जीवन को पकड़ लिया है।
तो मैं आपसे निवेदन करता हूं, नैतिक होने से कोई धार्मिक नहीं होता। नैतिक होने से वस्तुतः कोई नैतिक ही नहीं होता है, क्योंकि नैतिकता अहंकार को समाप्त ही नहीं करती और बढ़ाती है। और अहंकार सबसे बड़ी अनैतिकता है।
धार्मिक होने से यह होता है। धार्मिक चित्त, रिलीजस माइंड एक अदभुत क्रांति है। सारा जीवन बदल जाता है। फिर चोरी से बचना नहीं पड़ता, चोरी का चित्त ही चला जाता है। फिर झूठ से बचना नहीं पड़ता, झूठ का चित्त ही चला जाता है। फिर क्रोध से बचना नहीं पड़ता, क्रोध का चित्त चला जाता है। बुद्ध एक गांव के पास से निकलते थे, कुछ लोग वहां इकट्ठे हुए और उन्होंने बुद्ध को बहुत गालियां दीं, बहुत अपमानजनक शब्द कहे। बुद्ध ने खड़े होकर सुना, और फिर बाद में उनसे कहा कि मित्रो, तुम्हारी बात पूरी हो गई हो तो मैं जाऊं, मुझे दूसरे गांव थोड़ा जल्दी पहुंचना है।
वे लोग थोड़े हैरान हुए, गाली देने वाला सबसे ज्यादा हैरान तभी होता है
जब दूसरा आदमी उसकी गाली लेता नहीं। अगर ले ले तब तो हैरानी खतम हो जाती है। मामला बन जाता है। वह भी हमारे तल पर उतर आता है, हम भी उसके तल पर खड़े हो जाते हैं। बात सीधी और साफ हो जाती है। लेकिन बुद्ध ने कहा कि मुझे दूसरे गांव जल्दी जाना है। अगर तुम्हारी बातें पूरी हुई हों तो मैं जाऊं। उन लोगों ने कहाः ये बातें थीं क्या? हमने इतनी गालियां दीं, इतना अपमान किया?
बुद्ध ने कहाः तुमने किया वह तो ठीक है, लेकिन इतनी आजादी तो मुझे दोगे कि मैं उसे लूं या न लूं? इतना हक तो मुझे दोगे? तुमने गाली दी वह ठीक लेकिन मैं न लूं, इतना हक तो मुझे है। कि मुझे मजबूरी है कि मुझे लेनी पड़ेगी? बुद्ध ने कहा, पहले मैं भी ले लेता था लोग जो भी देते थे, अब तो मैं चुन-चुन कर लेता हूं जो लेना होता है, जो नहीं लेता वह नहीं लेता।
पिछले गांव में कुछ लोग मिठाइयां लेकर आए थे और कहने लगे कि ले लो। मैंने कहाः पेट मेरा भरा है, और बोझ ढोना ठीक नहीं, दूसरे गांव में फिर कोई दे ही देगा। वे बेचारे वापस ले गए। मिठाइयां वापस ले गए। अब तुम क्या करोगे? तुम गालियां लेकर आए हो। तुम्हें वापस ले जाना पड़ेगा। तुम गड़बड़ आदमी के पास आए गए। मैं लेता नहीं हूं। और उन्होंने तो अपने बच्चों को बांट दी होंगी मिठाइयां, तुम अपनी गालियां का क्या करोगे? बड़ी मुसीबत में पड़ गए। और तुम पर मुझे बहुत दया आती है। अब मैं क्या करूं, तुम्हें किस भांति सहारा दूं? मैं किस भांति तुम्हें बोझ से हलका करूं? मैं बिल्कुल मुश्किल में हूं, मैंने गालियां लेना बंद कर दीं। और गालियां लेनी मैंने इसलिए बंद नहीं कीं कि तुम पर मुझे कोई दया करनी है बल्कि इसलिए कि मुझे अपने पर दया आनी शुरू हो गई। जैसे-जैसे मैंने भीतर देखा मुझे अपने पर दया आने लगी और अपने से प्रेम हो गया। अब मैं अपने को इतना प्रेम करता हूं कि

मैं गाली नहीं लेता। अब मैं अपने को इतना प्रेम करता हूं कि मैं क्रोधित नहीं होता। अब मैं अपने को इतना प्रेम करता हूं कि चोरी असंभव है।
बुद्ध ने यह कहाः जब भी कोई व्यक्ति अपने चित्त में धर्म को पाएगा, तो
वह पाएगा कि क्रोध असंभव हो गया। गाली लेना असंभव हो गया। अपमान लेना असंभव हो गया। करना भी असंभव हो गया। जीवन एक बिल्कुल ही नई दिशा में गति करना शुरू करता है। नैतिक व्यक्ति की दिशा का कोई भेद नहीं है वह अनैतिक के साथ ही खड़ा है। जिस तरफ अनैतिक आंख किए खड़ा है नैतिक व्यक्ति उस तरफ पीठ किए खड़ा है, लेकिन खड़ा वहीं है, उसके खड़े होने में कोई डायमेंशन का फर्क नहीं है, कोई दिशा का फर्क नहीं है, कोई आयाम का फर्क नहीं है। वह वहीं खड़ा है। उसकी पीठ फेर लेने में कोई दिक्कत नहीं है, जरा ही हाथ का धक्का दो उसकी पीठ फेरी जा सकती है। जरा ही उसको जोर से एक सुई चुभा दो, तो उसकी स्किनडीप जो मॉरेलिटी है, खतम हो जाएगी, वह अपने असली रूप में वापस लौट आएगा। यह तो रोज होता है।
एक आदमी को हम देखते हैं रोज मस्जिद जाता है, नमाज पड़ता है; एक आदमी को
हम रोज देखते हैं गीता खोलता, पाठ करता है, तिलक लगाता है, चंदन लगाता है, सब करता है, और एक दिन हम अचानक पाते हैं कि हिंदू-मुसलमान लड़ गए। और वह नमाज पढ़ने वाला और गीता पढ़ने वाला छुरा लिए दौड़ा जा रहा है। बड़ा मुश्किल है। यह क्या हो गया इनको? ये तो बड़े नैतिक और भले आदमी थे, रोज नमाज पड़ते थे, गीता पड़ते थे, रामायण पड़ते थे, यह हो क्या गया? एक मंदिर तोड़ रहा है, दूसरा मस्जिद में आग लगा रहा है। यह हो क्या गया? इनकी नैतिकता गई कहां? इनका धर्म कहां गया? चमड़े से भी पतली नैतिकता थी वह, जरा उसको खरोंच दो खतम हो जाती है, उसमें कोई देर नहीं लगती। ऐसी नैतिकता का कोई मूल्य नहीं है। और ऐसी नैतिकता के भ्रम में मनुष्य आज तक रहा है।
मैं नीति को धर्म नहीं मानता, लेकिन धर्म को जरूर नीति मानता हूं।
और बहुत से प्रश्न हैं, आज तो मुश्किल होगा, आज तो तीन प्रश्न इतने लंबे रख दिए गए थे कि मैं उन्हें कितने संक्षिप्त में उत्तर दूं यह भी मुश्किल है। अभी एक और रह गया है, उसको अंत में थोड़े समय में कह देता हूं, फिर जो प्रश्न बचे हैं उनको कल ले लूंगा। और इसकी बहुत चिंता न करेंगे कि आपके प्रश्न का उत्तर हुआ कि नहीं। क्योंकि अगर जितने प्रश्नों के मैं उत्तर दे रहा हूं, उनसे मेरी दृष्टि आपको समझ में आ जाएगी, तो आपका प्रश्न अगर छूट भी गया, तो भी आप समझ ले सकते हैं कि मैं क्या कहता।
तो मैं चुने हुए जो प्रतिनिधि प्रश्न हैं उनके उत्तर दे रहा हूं। इसी ख्याल से कि मेरी दृष्टि आपके ख्याल में आ जाए। उत्तर का कोई मूल्य भी नहीं है, मेरी दृष्टि का आपको ख्याल में आ जाए। तो फिर आप जिन प्रश्नों के उत्तर मैंने नहीं भी दिए, उनका भी आप ख्याल कर ले सकते हैं कि मैं क्या कहूंगा।
पहला प्रश्न मैंने छोड़ दिया अंत के लिए, क्योंकि पहले प्रश्न में थोड़ी सी गड़बड़ी है। गड़बड़ी इसलिए है कि उसको मैं एक कहानी से ही आपको समझाऊं। क्योंकि जो बात सिद्धांत से नहीं बताई जा सकती वह शायद कहानी बता देती है।
एक सराय में एक रात मुल्ला नसरुद्दीन नाम का एक आदमी आकर ठहरा। एक बहुत अदभुत आदमी था जो कभी पैदा नहीं हुआ दुनिया में, नसरुद्दीन। वह कभी पैदा नहीं हुआ इसलिए कोई उसकी चिंता मत करना। लेकिन आदमी बहुत अदभुत था। और उसके बाबत बहुत कहानियां प्रचलित हैं। यह भी कहानी उसके बाबत प्रचलित है। वह एक सराय में ठहरा। सराय भरी हुई थी। एक कमरा, एक नया यात्री आकर ठहरा था, तो सराय के मालिक ने कहा कि अगर आप भी इस यात्री के साथ ठहर जाएं मुल्ला तो ठीक, खाली कमरा नहीं है।
रात आधी होती थी इसलिए मजबूरी में मुल्ला नसरुद्दीन को ठहरना पड़ा। यज्ञपि उन्होंने बहुत सोचा कि मैं किसी के साथ न ठहरूं। वे अकेले ही ठहरने चाहते थे, कुछ कारण था जिसके वजह से अकेले ठहरना चाहते थे। लेकिन मजबूरी थी, बाहर रात बिताने के बजाय भीतर रात बितानी बेहतर थी, चाहे किसी के साथ ही सही।

वे गए कमरे में। जूते और पगड़ी पहने हुए और कोट पहने हुए वे बिस्तर पर लेट गए। वह जो दूसरा यात्री था हैरान हुआ, उसने कहा कि आप कपड़े तो उतार दें, कम से कम पगड़ी और जूते तो खोल दें, ऐसे में कैसे नींद आएगी?
नसरुद्दीन ने कहाः मैं खुद ही परेशान हूं कि नींद कैसे आएगी? लेकिन एक बड़ा प्रश्न, एक बड़ा प्रॉब्लम है, उसके कारण मैं अपने जूते नहीं खोल रहा हूं।
वह आदमी बोलाः कौन सा प्रश्न है, कौन सी समस्या है?
नसरुद्दीन ने कहा कि कपड़े पहने रहा तब तो मैं पहचान जाता हूं कि मैं मुल्ला नसरुद्दीन हूं। और अगर मैंने कपड़े निकाल दिए, सुबह मैं कैसे पहचानूंगा कि मैं मुल्ला नसरुद्दीन हूं कि कोई और हूं? उसने कहा कि जब तक कपड़े पहने हूं तब तक मुझे पक्का पता है कि मैं मुल्ला नसरुद्दीन हूं लेकिन सुबह, अगर मैंने कपड़े उतार दिए और सुबह उठा और दो आदमी कमरे में हैं अगर अकेला होता तो भी मैं समझ जाता कि मैं मैं ही हूं। दो आदमी कमरे के भीतर हैं, मैं कैसे पहचानूंगा कि मैं कौन हूं और तुम कौन हो? मुल्ला नसरुद्दीन कौन है दो में से? कपड़े उतारने से यह खतरा है।
वह आदमी भी बोला यह तो बड़ी मुश्किल की बात है। अब यह जरूर मुश्किल का मामला है कि अब यह सुबह कैसे तय होगा कपड़े उतार देने पर? उसने कहा कि एक काम करो, उसके पहले उस कमरे में जो यात्री ठहरे होंगे उनमें का कोई बच्चा एक गुड्डी और एक फुग्गा छोड़ गया था। तो उसने कहा, इस फुग्गे को अपने पैर में बांध लो और गुड्डी को अपने बिस्तर के पास रख लो। ये सबूत हो जाएंगे तुम्हारे। जब तुम सुबह उठो तो देख लेना कि पैर में फुग्गा बंधा है, गुड्डी बिस्तर पर रखी है, तो तुम ही मुल्ला नसरुद्दीन हो।
उसने कहाः यह बात तुमने ठीक बताई। इससे कुछ तो चिह्न रहेगा, कुछ तो टेस्ट रहेगा, कुछ तो परीक्षा रहेगी, इम्तिहान रहेगा, पहचानने की कोई तो तरकीब रहेगी। उसने फुग्गा बांध लिया और गुड्डी रख कर नसरुद्दीन सो गया। वह दूसरा आदमी बड़ा शैतान रहा होगा। जब नसरुद्दीन सो गया, उसने फुग्गा निकाल कर अपने पैर में बांध लिया और गुड्डी अपने बिस्तर पर रख ली। जो कि कोई भी समझदार आदमी करता है ऐसे आदमी के साथ, उसने भी किया। सुबह में चार बजे के करीब नसरुद्दीन की नींद खुली तो वे घबड़ा गए, उचक कर खड़े हुए, उस आदमी को हिलाने लगे कि देखो वह गड़बड़ हो गई जो मैंने कही थी। पैर में फुग्गा नहीं है, गुड्डी पास में नहीं है, अब मैं कौन हूं? तुम तो मुल्ला नसरुद्दीन हो गए लेकिन मैं कौन हूं?
हम हंसते हैं इस आदमी पर। लेकिन हम पूछते हैं कि अगर हम भीतर जाएंगे
तो हम कैसे पहचानेंगे कि हम कौन हैं? कैसे हम जानेंगे कि मैं मैं ही हूं? मैं वही हूं जो हूं? यह हम पूछते हैं इसकी परीक्षा क्या? इसका उपाय क्या? इसका मेथड क्या? इसका लक्षण क्या? कैसे हम पहचानेंगे कि मैं मैं ही हूं? तो मैं आपसे निवेदन करता हूं, जब तक आप नहीं गए हैं तब तक यह प्रश्न उठता है। जैसे ही आपने आंख भीतर फेरी, न किसी परीक्षा की जरूरत और न पैर में किसी फुग्गे के बांधने की और न पास में कोई गुड्डी रखने की। आप भीतर आंख फेरते ही जानेंगे कि आप आप हैं। किसी से पूछने की इसके लिए कोई जरूरत नहीं है। और अगर इसके लिए भी पूछना पड़े, तब तो फिर बड़ी मुश्किल हो गई, फिर तो कोई रास्ता ही नहीं रह जाएगा। यह तो अंतिम स्थिति है, यह अंतिम तत्व है जो आप हैं, इसे किसी से पूछने की जरूरत नहीं है। तो सवाल यह नहीं है कि आप कैसे पहचानेंगे कि आप कौन हैं, सवाल यह है कि सिर्फ आप कैसे भीतर आंख ले जाएं? जो भी ले जाता है वह एकदम पहचान लेता है कि मैं मैं हूं। लेकिन आंख ही न ले जाएं तो सारी गड़बड़ है। और आंख ले जाने के पहले प्रश्न उठाएं तो बड़ी मुश्किल है, कोई रास्ता नहीं है। मैं भी नहीं बता सकता, कोई कभी नहीं बता सका इस बात को।
तो मैं निवेदन करूंगा, आंख भीतर ले जाने का रास्ता है। और आंख जब भीतर जाती है, तो आप उसी भांति पहचान लेते हैं कि आप आप हैं। जैसे अभी आपको भूख लगती है तो आप कैसे पहचान लेते हैं कि भूख लगी? कौन बताता है आपको? किसी से पूछने जाते हैं? कि कोई तरकीब बताइए कि मैं पहचान लूं कि मुझे भूख लगी है? आप बस पहचानते हैं कि मुझे भूख लगी है। प्यास लगती है आप पहचानते हैं कि

मुझे प्यास लगी है। पैर में कांटा गड़ जाता है तो आप जानते हैं कि मुझे दर्द हो रहा है, किसी से पूछते नहीं कि मैं कैसे पहचानूं कि मुझे दर्द हो रहा है। नहीं, बस आप जानते हैं कि आपको दर्द हो रहा। प्यास लगी, भूख लगी। अगर आप भीतर जाएंगे तो आप जानेंगे कि आप हैं। क्या हैं, कौन हैं, इसे भी जानेंगे बिना किसी प्रमाण के और बिना किसी विटनेस के, बिना किसी साक्षी के, बिना किसी गवाह के। असल में अगर हम अपने को भी जानने के लिए गवाह की जरूरत हो और परीक्षा की जरूरत हो, तब तो फिर हम दुनिया में कुछ भी न जान सकेंगे। कम से कम एक चीज तो हम जान सकते हैं बिना गवाह के और बिना परीक्षा के, वह स्वयं का होना है।
लेकिन प्रश्न उठता है और प्रश्न बिल्कुल उचित उठता है। क्योंकि हमें
डर लगता है कि हम अपने को जानते तो है नहीं। बाहर की दुनिया में तो हम अपने को थोड़ा-बहुत पहचानते हैं क्योंकि पैर से फुग्गा बंधा रहता है, पास में गुड्डी रखी रहती है। मैं जानता हूं कि मैं फलां जगह, फलां-फलां आदमी हूं, फंलानी पोस्ट पर काम करता हूं, मेरा यह नाम है, मेरी यह पत्नी है, मेरा यह मकान है, बाहर की दुनिया में तो हम अपने को पहचानते हैं। अपने कपड़ों से, जैसे नसरुद्दीन ने कहा, उस पर तो आप हंसे थे, लेकिन आप भी अपने को अपने कपड़ों के अलावा और किस चीज से पहचानते हैं? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं अपनी पगड़ी निकाल लूं तो फिर पहचानूंगा कैसे? एक राष्टपति राष्टपति रहता है तो वह पहचानता है कि मैं राष्टपति हूं। वह राष्टपति न रह जाए तो फिर कैसे पहचानेगा? एक राजा अपने को राजा रहने से पहचानता है कि मैं राजा हूं। आप भी अपने को कुछ होने से पहचानते हैं कि मैं यह हूं।
तो बाहर की दुनिया में तो हमने कुछ-कुछ इशारे बना लिए हैं जिनसे हम पहचान लेते हैं। लेकिन भीतर की दुनिया में कोई इशारा नहीं है, अनचाटर्ड सी है वह, वहां कोई निशान नहीं लगे हैं। सागर है। राह के किनारे लगी हुई बत्तियां नहीं हैं और राह के किनारे मील के पत्थर नहीं हैं। समुद्र की तरह है, जहां कोई कुछ पहचानने जैसा नहीं लगता। तो वहां हमें बड़ी घबड़ाहट होती है। वहां नाम भी काम नहीं देता। क्योंकि नाम बाहर के उपयोग कि लिए है, भीतर नाम है ही नहीं। वहां पद काम नहीं देता, पद बाहर के उपयोग के लिए है, भीतर कोई पद नहीं है। तो घबड़ाहट लगती है कि वहां पहचानेंगे कैसे?
लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि अगर आंख भीतर ले गए, तो जरूर पहचान लेंगे, जरूर पहचान लेंगे। और जब तक आंख भीतर न ले गए तब तक नहीं पहचानेंगे, नहीं पहचानेंगे।
आंख कैसे भीतर ले जाएं, उसकी कल या परसों सुबह में आपसे चर्चा करूंगा
कि आंख भीतर कैसे जा सकती है।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना है, जो कि हो सकता है उतनी प्रीतिपूर्ण न हों जितनी कि आप चाहते हों, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और धन्यवाद करता हूं।
एक बात जो मैं रोज ही निवेदन कर देना चाहता हूं वह यह कि मेरी बातें मान लेने के लिए नहीं हैं। जैसा कि हरेक उपदेशक आपसे कहता है कि मेरी बातें मान कर आचरण करना। वैसा मैं नहीं कहता, मैं कोई उपदेशक नहीं हूं। मैं यह आपसे नहीं कहता कि मेरी बातें मान लेना और इनके अनुसार आचरण करना। भूल कर ऐसा काम मत करना। न तो मानना और न आचरण करना। मेरी बातों को सोचना, विचार करना, विश्लेषण करना। हो सकता है उस विश्लेषण से कोई चीज आपको दिखाई पड़ जाए, कोई अंतर्दृष्टि आपको उपलब्ध हो जाए। वह अंतर्दृष्टि आपकी होगी, वह आपके मार्ग को प्रशस्त करेगी, वह आपके मार्ग को प्रकाशित करेगी। परमात्मा करे हम सबके भीतर उस अंतर्दृष्टि का जन्म हो, जो सोई है और जाग सकती है, जो बीज की तरह है और विकसित हो सकती है।

अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सत्य की प्यास
पांचवां प्रवचन

शून्यता

मेरे प्रिय आत्मन्!
सत्य की खोज में स्वतंत्रता और सरलता के दो अनिवार्य भूमिकाओं के बाबत थोड़ी सी बातें मैंने कही हैं और आज शून्यता के संबंध में कुछ कहूंगा। चित्त सरल हो, स्वतंत्र हो और शून्य हो तो ही उसे जाना जा सकता है जो जीवन का गूढ़तम रहस्य है। चाहे उसे परमात्मा कहें, चाहे कोई और नाम दें। शून्यता की दिशा में सबसे पहला चरण हैः न जानने की भाव-दशा, स्टेट ऑफ नॉट नोइंग। हम सभी जानते हुए मालूम होते हैं। हम सभी को यह भ्रम है कि हम जीवन को जानते हैं। जन्म ले लेने से कोई जीवन को जानता नहीं। और न ही श्वास ले लेने से कोई जीवन को जान लेता है। लेकिन जन्म के कारण श्वास चलती है इस वजह से, भूख लगती है, प्यास लगती है इस वजह से यदि हम सोच लेते हों कि हमने जीवन को जान लिया है तो हम भ्रांति में हैं।
जीवन को हम जानते नहीं हैं, एकदम अपरिचित हैं। और जो जीवन से अपरिचित
है उसे नाममात्र को ही जीवित कहा जा सकता है वह वस्तुतः जीवित नहीं है। सबसे पहली बात, यह जो जानने का भ्रम है हमें, यह जो इल्युजन ऑफ नालेज है। यह जो भ्रांति है कि हम जानते हैं, यह भ्रांति न छूटे तो चित्त शून्य नहीं हो सकता। क्योंकि चित्त भर गया है ज्ञान से, जानने के भ्रम से। सच यह है कि जीवन है अज्ञात, अननोन। उसके ओर-छोर का हमें कोई बोध नहीं। जीवन के केंद्र का हमें कोई बोध नहीं। जीवन के अर्थ और अभिप्राय का हमें कोई बोध नहीं। कुछ अनुमान हैं जिनके आधार पर ज्ञान का भ्रम पैदा होता है। क्यों हम पैदा हुए हैं? क्यों जीते हैं? क्यों है यह सत्ता? क्यों है यह सारा, सारा विस्तार? कुछ भी पता नहीं है। अज्ञान, इग्नोरेंस बड़ा सत्य है। लेकिन बहुत से अनुमान हैं हमारे और उन अनुमानों के आधार पर, कल्पनाओं के आधार पर अज्ञान को ढांक लिया है और ज्ञानी बन गए हैं। इस ज्ञानी बन जाने ने जीवन के रहस्य को समाप्त कर दिया है। वह जो मिस्टी है, वह जो जीवन का रहस्य है समाप्त हो गया है। और जिस व्यक्ति के चित्त से जीवन का रहस्य समाप्त हो जाता है, उस व्यक्ति के चित्त में कभी सत्य का अवतरण नहीं हो सकता।
नहीं चाहिए ज्ञान, चाहिए रहस्य की अनुभूति। लेकिन जिन चीजों को हम जानते हुए प्रतीत होने लगते हैं उन चीजों के प्रति रहस्य विलीन हो जाता है।
आपके द्वार पर वृक्ष लगा हो, रोज सुबह उसके पास से निकल जाते हैं, आंख उठा कर भी नहीं देखते हैं। आकाश तारों से भरा रहता है, कौन आंख उठा कर देखता है उन तारों को? सुबह सूरज निकलता है, कौन देखता है? शायद हम सोचते हैं कि जानते हैं हम सूरज को, वही सूरज जो कल निकला था वही आज भी निकल रहा है। वे तारे जो कल थे वे ही आज भी हैं। और वह वृक्ष वही है जो रोज हम देखते हैं। लेकिन क्या रोज देख लेने से वृक्ष से हम परिचित हो गए हैं? या कि तारों से, या कि सूरज से, यह जो विराट विस्तार है चारों तरफ क्या हम इसे जान गए हैं? लेकिन नहीं; रोज-रोज देखने से एक झूठा परिचय पैदा हो गया है। पति अपनी पत्नी को भी नहीं जान पाता, सोचता होगा, जान लिया। पिता अपने पुत्र को भी नहीं जान पाता, सोचता होगा, जान लिया। जीवन में सब कुछ अत्यंत अपरिचित और अज्ञात है। लेकिन कुछ अनुमान हैं जो बाधा देते हैं।
बुद्ध बारह वर्ष के बाद अपने गांव वापस लौटे। सारा गांव उन्हें लेने गया। सारा गांव। लेकिन उनकी पत्नी उन्हें लेने नहीं गई। उस गांव में उस दिन एक ही व्यक्ति रुक गया पीछे जो उनकी पत्नी थी। पिता भी लेने गए थे, गांव के बाहर बुद्ध के पिता ने कहा, अभी भी मैं क्षमा कर सकता हूं, तुम भाग गए थे इस बात को भूल सकता हूं। तुमने चोट पहुंचाई बुढ़ापे में मेरे मन को, इस बात को भी क्षमा कर सकता हूं अगर वापस लौट आओ। मेरे द्वार अब भी खुले हुए हैं। क्रोध में मैंने उन्हें बंद नहीं कर दिया है।

बुद्ध ने क्या कहा? बुद्ध ने अपने पिता को कहाः आप भूलते हैं, आप मुझे देख भी नहीं रहे हैं कि मैं क्या होकर लौटा हूं और क्या जान कर और क्या पाकर?
बुद्ध के पिता ने कहाः भलीभांति जानता हूं तुम्हें, मेरे ही पुत्र हो
और मैं न जानूंगा। मैंने ही जन्म दिया और मैं न जानूंगा। मेरे ही खून हो और मैं न जानूंगा।
बुद्ध ने कहाः माना कि आपने मुझे जन्म दिया था, लेकिन भूल जाते हैं इस बात को कि आप एक रास्ते की भांति थे जिस पर से मैं आया, लेकिन आप मेरे बनाने वाले नहीं थे। आप एक रास्ते की भांति थे जिस पर से मैं आया दुनिया में, लेकिन आप मेरे बनाने वाले नहीं थे। और जिस रास्ते से गुजर कर मैं अभी आ रहा हूं अगर वह रास्ता यह कहने लगे कि मैं जानता हूं इसे, क्योंकि यह आदमी मेरे ऊपर से निकला था। तो उस रास्ते की जितनी बड़ी भूल होगी उससे छोटी भूल आपकी नहीं है। पिता भी पुत्र को जानता नहीं, क्योंकि पुत्र का होना भी एक इतना बड़ा रहस्य है, और इतने अछोर और अज्ञात जीवन से आना हुआ है उस पुत्र का। लेकिन हम सोचते हैं कि पिता हैं तो हम जानते हैं। पति हैं तो हम जानते हैं। पत्नी है तो हम जानते हैं। और यह जानने का प्रश्न न केवल मनुष्य तक सीमित है, चारों तरफ हर चीज रहस्यमय है और अज्ञात है, उस सबको भी हम मान लेते हैं कि हम जानते हैं। क्या जानते हैं आप? जानना हमारा क्या है?
गहन, गहन अज्ञान है। लेकिन जानने का भ्रम। जानने का इस भ्रम ने मनुष्य
को धर्म से तोड़ा है। इधर विज्ञान का इतना विकास हुआ है, तो मनुष्य के जानने के भ्रम में और बढ़ती हो गई। उसका यह इल्युजन और बढ़ गया कि हम जानते हैं। क्योंकि उसने कुछ कामचलाऊ बातें पता लगा ली हैं।
एक बहुत बड़ा विद्युत का जानकार वैज्ञानिक एक कालेज में गया था। उस कालेज के विद्यार्थियों ने बहुत-बहुत से उपक्रम बनाए थे विद्युत के, और नये-नये चमत्कार पैदा किए थे। उस बड़े वैज्ञानिक को दिखाने वे अपनी प्रयोगशाला में ले गए। उन बच्चों को ज्ञात भी न था कि जिसे वे दिखला रहे हैं उससे बड़ा विद्युत को जानने वाला, इलेक्टिसिटी को जानने वाला और कोई व्यक्ति जमीन पर नहीं है। उन्होंने अपनी--छोटी-छोटी चीजें हैं, बड़ी चीजें जो बनाई थीं, वे दिखलाईं। वह वैज्ञानिक खूब प्रशंसा करता रहा। और अंत में उसने पूछा कि क्या मेरे दोस्तो, तुम यह बता सकोगे कि विद्युत क्या है? वॉट इ.ज इलेक्टिसिटी? वे बच्चे ठगे रह गए। उन्होंने कहाः यह तो हम नहीं जानते। तो उसने कहा कि तुम यह भी जान लो, मुझसे ज्यादा जमीन पर शायद ही कोई विद्युत के संबंध में जानता हो, लेकिन मैं भी यह नहीं जानता हूं कि विद्युत क्या है! हम जानते हैं कि विद्युत का कैसे उपयोग कर लें, लेकिन हम यह नहीं जानते कि विद्युत क्या है!
साइंस ज्ञान नहीं है, साइंस युटिलिटी है। साइंस जानना नहीं है जीवन को, लेकिन किन्हीं शक्तियों का उपयोग कर लेना है। तो अब तक जो भी हम जान पाए हैं वह केवल उपयोग कर लेना जान पाए हैं, अभी हमने कुछ जाना नहीं है। मनुष्य ने कुछ भी नहीं जाना है। लेकिन इधर विज्ञान का विकास हुआ, तो और भ्रम पैदा हो गया लोगों को, उन्हें लगने लगा कि हम सब जान गए। यह भी हो सकता है कि किसी दिन विज्ञान जीवन को पैदा कर ले, लेकिन इससे कुछ सिद्ध नहीं होता। फिर भी जीवन को जाना नहीं जा सकेगा।
यह जो विज्ञान है, इसने तो कुछ व्यावहारिक प्रयोग किए हैं। और कुछ नतीजे उपयोगिता के लिए ले लिए। फिर दर्शन हैं, उसने अनुमान किए हैं आकाश के हवाई। और उनके आधार पर कुछ निर्णय ले लिए हैं। उन्होंने भी हमारे मस्तिष्क को ज्ञान से भर दिया है। लेकिन अब तक का सारा ज्ञान अंधेरे में टटोलने जैसा है और शायद हमेशा रहेगा। शायद हम जीवन के पूर्ण केंद्र को कभी भी इस भांति नहीं जान सकेंगे। क्योंकि जानने वाला बहुत छोटा है। और जो जाना जाना है वह बहुत विशाल, बहुत अनंत है, उसकी कोई सीमाएं नहीं। मनुष्य की बुद्धि बहुत छोटी और वह जो सत्य है बहुत विराट और अनंत। वह ऐसा ही जैसे कोई छोटी सी मटकी लेकर सागर के किनारे चला जाए और सागर को मटकी में भरने का प्रयास करने लगे। सागर तो शायद न भरे, मटकी टूट जाए।

सागर भी छोटा है उस सत्य की दृष्टि में, तुलना में जो जीवन है। और मटकी
भी बड़ी है उस बुद्धि की तुलना में जो हमारे पास है। बुद्धि है बहुत अल्प और बहुत छोटी, और होगी भी। और जीवन है बहुत विराट और बहुत अनंत, क्या बुद्धि इस जीवन को जान सकेगी? क्या कोई रास्ता है कि बुद्धि इस जीवन को जान ले? नहीं, बुद्धि अनुमान कर सकेगी, कल्पना कर सकेगी, धारणा बना सकेगी। और वे धारणाएं वैसी ही होंगी जैसी शेखचिल्लियों की होती हैं।
सुना होगा, एक गांव में एक शेखचिल्ली था। ऐसी कोई भी बात न थी जो वह न जानता हो। सर्वज्ञ था। सभी शेखचिल्ली सर्वज्ञ होते हैं। और सभी सर्वज्ञ शेखचिल्ली होते हैं। ऐसी कोई भी बात न थी जो वह न जानता हो। कैसे भी प्रश्न हों वे उनके उत्तर देने को सदा तैयार था। वह ज्ञानी था, परम ज्ञानी था। गांव के राजा की चोरी हो गई। सब तरफ खोज-बीन कर ली गई। सिपाही थक गए, जासूस थक गए, गांव के ज्योतिषी थक गए, भविष्यवक्ता थक गए। तब सबने हार मान ली और राजा से कहाः अब एक ही उपाय है, शेखचिल्ली को और पूछ लिया जाए। शेखचिल्ली को राजा ने दरबार में आमंत्रित किया। वह उसी भांति आया जैसे ज्ञानी आते हैं--जो सब जानते हैं, जिस भांति अकड़ से भरे हुए हैं--वह भी दरबार में आया। राजा ने उससे कहा कि हमने सुना है कि तुम सभी कुछ जानते हो, क्या तुम बता सकते हो कि चोरी किसने की?
उस शेखचिल्ली ने कहाः ऐसी कौन सी बात है जो मैं नहीं जानता हूं? लेकिन
यह बात अकेले में बताऊंगा। सबके सामने इस बात को नहीं बताया जा सकता है। राजा ने कहाः यह उचित है। पता नहीं किसने चोरी की है, शेखचिल्ली उसका नाम ले दे और बाद में मुसीबत में पड़े या कोई झंझट डाली जाए। उस राजा ने कहाः यह उचित है, तुम एकांत में चलो। वे एकांत में गए। राजा ने कहाः अब बताओ, दरवाजे बंद कर लिए गए भवन के।
शेखचिल्ली ने कहाः आपके कान में कहूंगा। राजा के मकान की दीवालें भी सुनती हैं। उसने शेखचिल्ली ने राजा के कान में कहाः बिल्कुल निश्चित बता दूं।
राजा ने कहाः निश्चित ही बताओ।
शेखचिल्ली ने कहाः निश्चित है किसी चोर ने चोरी की है।
यह जो शेखचिल्ली है, इस पर हम हंसते हैं। लेकिन ज्ञानियों से पूछो, दुनिया किसने बनाई है? वे कहते हैं, किसी बनाने वाले ने दुनिया बनाई है। वे कहते हैं किसी ईश्वर ने दुनिया बनाई है। मतलब क्या है किसी बनाने वाले ने दुनिया बनाई है? किसी चोर ने चोरी की है? ये ज्ञानी भी शेखचिल्लियों से बहुत ज्यादा भिन्न नहीं हैं। इनसे पूछो, दुनिया किसने बनाई है? वे कहते हैं किसी बनाने वाले ने दुनिया बनाई है। और बनाने वाले का नाम भी उन्होंने अपने मन से रख लिया है। किसी ने ईश्वर, किसी ने अल्लाह, किसी ने कुछ, किसी ने कुछ। यह कोई नई बात बता रहे हैं आप कि किसी बनाने वाले ने दुनिया बनाई है? यह क्या उस बात से बहुत भिन्न है कि किसी चोर ने चोरी की है? इसमें क्या भेद है? इससे कुछ ज्ञान बढ़ता है?
नहीं; इससे केवल हमारा अज्ञान ढंक जाता है और ज्ञान का भ्रम पैदा हो जाता है। और दुनिया में अनुमान लगाने वाले लोग, जिनको लोग फिलासफर्स कहते हैं, दार्शनिक कहते हैं। वे काफी बड़ी तादात में पैदा हुए हैं। और उन्होंने सारे दुनिया के अज्ञान को ढंक दिया है, और ज्ञान की सब बातें बता दी हैं। लेकिन वे सब निपट अनुमान हैं। और इसी वजह से इन अनुमानों पर झगड़े और विवाद खड़े होते हैं, शास्त्रार्थ खड़े होते हैं।
मैं निवेदन करता हूं, इस तरह के ज्ञान से जो भरा है वह कभी सत्य को नहीं जान सकेगा। ये सब अनुमान हैं, ज्ञान नहीं; अंधेरे में टटोलना है।
एक छोटी सी घटना मुझे याद आती है, वह मैं कहूं।
एक स्कूल इंस्पेक्टर का दिमाग खराब हो गया था। हुकूमत को खबर कर दी गई
थी कि उसका दिमाग खराब हो गया। लेकिन जैसे कि हुकूमतों की चाल होती है बहुत धीमी। खबर पहुंच गई थी, विचार चलता था, आज्ञाएं निकलने को थीं। शायद उस इंस्पेक्टर के रिटायर्ड होते-होते तक आर्डर पहुंच जाएगा, उसकी चिकित्सा की व्यवस्था हो जाएगी। लेकिन अभी बहुत देर थी। और तब तक वह पागल इंस्पेक्टर अपनी जगह पर काम कर रहा था, स्कूलों के निरीक्षण कर रहा था। जब

तक वह पागल नहीं हुआ था, तब तक वह कभी निरीक्षण को गया भी नहीं था। लेकिन जब से पागल हुआ था तब से वह दिन-रात निरीक्षण करता रहता था। इसी से तो दूसरे इंस्पेक्टरों को पता चला था कि यह पागल हो गया है। वैसे कोई जो पागल नहीं होता वह इंस्पेक्टर कभी निरीक्षण को जाता है? वह दफ्तर में बैठे-बैठे निरीक्षण भर देता है। लेकिन यह कुछ गड़बड़ हो गया था। दूसरे इंस्पेक्टरों को इसी से तो शक हुआ था कि इसका दिमाग कुछ गड़बड़ है। वह महीने में तीस ही दिन निरीक्षण करता फिरता था।
पागलों को काम करने में बड़ा आनंद आता है। इसी तरह के पागलों ने तो दुनिया में काम खूब किया है और बहुत मुसीबत खड़ी कर दी है। पागल कभी शांत बैठने को राजी नहीं होते, उन्हें तो कुछ न कुछ काम चाहिए। वह इंस्पेक्टर भी शांत बैठने को राजी नहीं था। हर स्कूल में मुसीबत कर दी, जहां भी वह निरीक्षण करने गया। क्योंकि वह ऐसे प्रश्न पूछता था जिनके उत्तर ही नहीं हो सकते हैं। और जब उत्तर नहीं मिलते थे तो वह रिपोर्ट खराब कर आता था कि इस स्कूल के बच्चों को कुछ भी नहीं आता। बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई थी।
एक गांव में उसके आने की खबर आई तो स्कूल के अध्यापक, प्रधानाध्यापक, बच्चे सभी डरे हुए थे कि पता नहीं क्या हो। आखिर वह आया। जिस मुसीबत से लोग डरते हैं वह और भी जल्दी आ जाती है। आखिर वह आ ही गया।
सारा स्कूल घबड़ाया हुआ था, अध्यापक, प्रधानाध्यापक घबड़ाए हुए थे, वह न मालूम क्या पूछेगा? उसके पूछने में न कोई तुक होती थी, न कोई बात होती थी। उसके प्रश्न बड़े फिलासफीकल होते थे, बड़े दार्शनिक होते थे, बड़े ऊंचे होते थे। ऊंचे प्रश्न वे होते हैं जिनके उत्तर नहीं हो सकते। इसलिए ऊंचे प्रश्न या तो पागल पूछते हैं, या दार्शनिक पूछते हैं। और इसलिए लोगों को ख्याल भी है कि पागल और दार्शनिकों में कोई भाईचारा होता है, कोई निकट संबंध होता है। इसलिए अक्सर अगर पागल थोड़ी अच्छी बात करना जानते हों, तो दार्शनिक हो जाते हैं और दार्शनिक अगर थोड़ी गड़बड़ बात करने लगें तो पागल हो जाते हैं। इससे ज्यादा कोई फर्क कभी होता नहीं।
वह आया, जो स्कूल की सबसे बड़ी कक्षा थी उसके भीतर गया और उसने कहा कि मेरे बच्चों एक ऐसा प्रश्न पूछता हूं जो बहुत सरल है और एक लिहाज से बहुत कठिन भी है। सरल तो है प्रश्न, कठिन इसलिए है कि मैंने न मालूम कितने विद्यालयों में पूछा कोई उत्तर ही देने में समर्थ नहीं है। शिक्षा का स्तर मालूम होता है बहुत गिर गया। जब से अंग्रेज गए हैं तब से सब गड़बड़ हो गई है। कोई उत्तर ही नहीं देता। फिर भी मैं आशा बांधे हुए हूं कि कोई न कोई उत्तर तो देगा। हो सकता है कि आज तुम्हारे स्कूल में मुझे उत्तर मिल जाए। और अगर मेरे पहले प्रश्न का उत्तर मिल गया तो फिर मैं दूसरा प्रश्न नहीं पूछूंगा। क्योंकि हंडी का एक ही चावल देख लिया जाता है और उससे पता चल जाता है कि हंडी पकी या नहीं। और अगर मेरे पहले प्रश्न का उत्तर तुमने न दिया तो आज सांझ तक मैं तुम से प्रश्न पर प्रश्न पूछे चला जाऊंगा।
उसने पहला प्रश्न पूछा, उसने पूछा कि दिल्ली से एक हवाई जहाज दो सौ मील प्रति घंटा की रफ्तार से कलकत्ते की तरफ उड़ा, तो क्या तुम बता सकते हो कि मेरी उम्र कितनी है?
सब लड़के बहुत घबड़ा गए। इसमें कोई तुक नहीं था, कोई संबंध नहीं था। हवाई जहाज कितने मील घंटे की रफ्तार से कलकत्ते की तरफ उड़े, इससे इंस्पेक्टर की उम्र का क्या संबंध है? लेकिन जब प्रश्न पूछ ही लिया गया था, तो उत्तर देना तो जरूरी था। अध्यापक घबड़ा गया, प्रधानाध्यापक कंपने लगा कि कि खराब कर देगा रिपोर्ट। और उत्तर तो हो क्या सकता है इसका? लेकिन इससे भी घबड़ाने की बात दूसरी हुई, यह तो कोई खास बात न थी। घबड़ाने की बात यह हुई, एक लड़के ने उत्तर देने के लिए हाथ उठाया। तब तो अध्यापक और घबड़ा गए कि यह तो और मुसीबत हो गई। उत्तर न देना भी ठीक था। कम से कम अज्ञान ही सिद्ध होता, अब तो महाअज्ञान सिद्ध हो जाएगा, यह लड़का क्या उत्तर देगा? सभी गलत होंगे। कोई उत्तर सही नहीं हो सकता, क्योंकि प्रश्न ही गलत है। लेकिन जब हाथ हिला दिया गया था, तो इंस्पेक्टर बहुत खुश हुआ, उसने कहाः यह पहला मौका है कि किसी ने मेरे प्रश्न के उत्तर देने की हिम्मत की है। बेटे खड़े हो जाओ और उत्तर दो। कितनी है मेरी उम्र?

वह लड़का खड़ा हुआ और उसने कहा कि यह भी मैं आपको बता दूं, मेरे सिवाय इस प्रश्न का उत्तर दुनिया में कोई भी आपको दे नहीं सकता था। इसका उत्तर सिर्फ मुझको मालूम है, आपकी उम्र चवालीस वर्ष है।
वह इंस्पेक्टर बहुत घबड़ा गया। उम्र उसकी चवालीस वर्ष थी। उसने कहाः क्या तुम बताओगे, किसी मेथड से, किस विधि से तुमने यह उत्तर निकाल लिया? उस लड़के ने कहाः विधि बहुत सरल है, लेकिन सिर्फ मुझको पता है इसलिए आपको उत्तर नहीं मिल पाया। मेरा बड़ा भाई है उसका आधा दिमाग खराब है, उसकी उम्र बाईस वर्ष है, आपकी उम्र चवालीस वर्ष होनी चाहिए। यह उत्तर सिर्फ मेरे ही पास हो सकता था क्योंकि मेरे भाई का दिमाग आधा खराब है, उसकी उम्र बाईस वर्ष है। हवाई जहाज कितनी ही रफ्तार से जाए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, आपकी उम्र चवालीस वर्ष है।
हम हंसते हैं इस बच्चे पर, लेकिन दार्शनिकों ने तो उत्तर दिए हैं वे इससे भिन्न नहीं हैं। और दार्शनिकों ने जो प्रश्न पूछे हैं वे भी इससे भिन्न नहीं हैं। दार्शनिक क्या पूछ रहे हैं? क्या बातें पूछ रहे हैं? जिनको हम तथाकथित धार्मिक कहते हैं, वे क्या पूछ रहे हैं?
मेरे पास बहुत से इस तरह के प्रश्न आए हैं। ईश्वर की शक्ल कैसी है? प्रश्न आया है। ईश्वर कहां रहता है? क्या करता है? क्यों उसने दुनिया बनाई? मरने के बाद आत्मा कहां जाती है? स्वर्ग या नरक हैं या नहीं? मोक्ष जैसी कोई जगह है या नहीं? ये सब किस भांति के प्रश्न हैं? लेकिन चूंकि हजारों वर्ष से इन प्रश्नों को प्रतिष्ठा रही है, हम यह भी पूछना भूल गए हैं कि ये पागलपन के सबूत हैं। जीवन इस तरह की अटकलबाजियों में बिताने का कोई भी अर्थ नहीं है। और क्या निर्णय हो सकता है? अगर कोई कहने लगे कि ईश्वर पश्चिम की तरफ रहता है। तो क्या निर्णय करिएगा कि रहता है या नहीं। दूसरा कहने लगे पूरब की तरफ रहता है, तो कैसे निर्णय करिएगा कि पूरब की तरफ रहता है या नहीं। फिर एक ही रास्ता है कि जो कहता, पश्चिम की तरफ रहता है और जो कहता है, पूरब की तरफ रहता है। दोनों कुश्ती लड़ लें, जो जीत जाए वह ठीक। यही हो रहा है आज पांच हजार वर्षों से। कि लड़ लो और तय कर लो, जो जीत जाए वह ठीक, जो हार जाए वह गलत। और तो कोई निर्णय का रास्ता नहीं है। इसलिए जिन लोगों को संख्या बढ़ती जाती है वे जीतते मालूम होने लगते हैं। क्रिश्चियंस की संख्या अगर एक अरब के करीब पहुंचने लगी, तो उनको ख्याल हो गया कि वे जीत रहे हैं, क्योंकि दूसरों की संख्या कम पड़ती जा रही है, दूसरे हारते जा रहे हैं, आखिर में तय हो जाएगा कि हम जीत गए। इसलिए सारे धर्मों के लोग अपनी संख्या बढ़ाने के लिए उत्सुक रहते हैं। और उनकी संख्या कम न हो जाए, इसलिए भी उत्सुक रहते हैं। क्योंकि ताकत ही आखिर में तय कर देगी कि सत्य कौन है और असत्य कौन है।
लेकिन ताकत से कहीं सत्य के निर्णय हुए हैं? लेकिन अटकलबाजियां हैं। अंधेरे में चलाए गए तीर हैं। वे लग जाएं तो ठीक, न लग जाएं तो ठीक। जैसा उस बच्चे ने कहा चवालीस की उम्र वर्ष है। एक अटकलबाजी थी। भाई का आधा दिमाग खराब है, तो इसकी चवालीस होनी चाहिए। एक अटकलबाजी थी। इस तरह हमारी सारी, जिसको हम मैटाफिजिकल थिंकिंग कहते हैं। जिसको हम आध्यात्मिक चिंतन और मनन कहते हैं, वह इसी तरह की नासमझियों से भरा हुआ है।
तो मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूं, इस बात को समझ लेना बहुत आवश्यक है कि मनुष्य की बुद्धि अनुमान के द्वारा ज्ञान पर नहीं पहुंच सकती। और जितना भी ज्ञान है हमारा वह सभी अनुमान है। वह सभी अनुमान है। फिर क्या रास्ता है?
तो पहली बात है, इस बात की स्वीकृति कि अज्ञान एक तथ्य है, एक सत्य है। अज्ञान का स्वीकार, इस बात की स्पष्ट प्रतीति कि नहीं जानते हैं। सत्य की खोज में, शून्यता की दिशा में मैं नहीं जानता हूं, इस स्थिति को पाना अत्यंत अनिवार्य है। क्या कठिन है इस बात को पा लेना। सत्य तो यही है, तथ्य तो यही है कि हम नहीं जानते हैं। मैं नहीं जानता हूं। और आपको पता भी नहीं है अगर यह बोध आपको स्पष्ट हो जाए कि मैं नहीं जानता हूं, यह स्टेट ऑफ नॉट नोइंग, यह न जानने का भाव स्पष्ट हो जाए, तो आपका चित्त एकदम शांत हो जाएगा,

एकदम सरल हो जाएगा, एकदम स्वतंत्र हो जाएगा और शून्य की तरफ जाने की उसकी क्षमता बहुत प्रगाढ़ हो जाएगी।
इसको देखें, पहचानें, समझें, मैं नहीं जानता हूं। अगर यह इस वक्त भी ख्याल में आ जाए कि सच ही मैं कुछ भी तो नहीं जानता हूं, तो आप भीतर पाएंगे कि कोई चीज जैसे शांत हो गई, कोई उद्विग्नता जैसे विलीन हो गई, कोई उलझन जैसे समाप्त हो गई, कोई प्रश्न जैसे विलीन हो गए और भीतर एक प्रगाढ़ सन्नाटा उतरने लगेगा।
शून्यता की दिशा में पहला चरण हैः मैं नहीं जानता हूं। दूसरा चरण क्या है? इस पहले चरण से अपने आप दूसरा चरण निकलता है। जो व्यक्ति यह अनुभव कर लेता है ‘मैं नहीं जानता हूं’ उसे सारा जीवन अत्यंत रहस्य से, मिस्टी से भर जाता है। एक छोटा सा पत्ता भी वह देखता है तो उसके प्राण रहस्य से भर जाते हैं, क्या है? एक छोटा सा बीज अंकुर बनता है तो उसके प्राण रहस्य से आंदोलित हो उठते हैं, क्या है? किसी आंख में झांकता है तो, किसी सुंदर चेहरे को देखता है तो, किसी को मुस्कुराते देखता है तो, किसी को रोते देखता है तो। जीवन में कुछ भी दिखाई पड़ता है तो उसके प्राण आंदोलित होने लगते हैं, क्या है यह? क्या है? जब तक वह जानता था कि मैं जानता हूं, तब तक, तब तक यह रहस्यपूर्ण जिज्ञासा उसे घेरती नहीं थी। जिस दिन उसने जाना कि मैं नहीं जानता हूं, उस दिन सारा जीवन रहस्यपूर्ण हो उठता है। एक अपूर्व मिस्टी, एक अज्ञात रहस्य सब तरहों से प्राणों को छेदने लगता है और कंपाने लगता है। उस कंपन से क्या पैदा होता है? रहस्य के कंपन से किस बात का जन्म होता है?
मैं आपसे निवेदन करता हूं, रहस्य के कंपन से प्रेम का जन्म होता है।
जो रहस्य से भर जाता है उसका हृदय प्रेम से भर जाता है। असल में प्रेम अज्ञात और रहस्यपूर्ण के तरफ उठा हुआ भाव है। जिसे हम सामान्य लौकिक भाषा में प्रेम कहते हैं, वह भी अज्ञात और रहस्यपूर्ण के प्रति उठा हुआ भाव है। एक युवक एक युवती को देख कर प्रेम से भर जाए। किस चीज के प्रति प्रेम
से भर रहा है? उस युवती में उसे कोई सौंदर्य दिखाई पड़ा है जो बिल्कुल अज्ञात है और रहस्यपूर्ण है। जिसे वह नहीं समझ पा रहा। जो उसकी समझ के पार हुआ जा रहा है। कोई अज्ञात सौंदर्य उसके प्राणों को खींच रहा है जो उसकी समझ के बाहर है। वह आकर्षित हो गया है। वह उस युवती को प्रेम करके, विवाह करके घर ले आता है। और महीने-पंद्रह दिन बीतता नहीं कि प्रेम क्षीण होता मालूम पड़ता है। वर्ष दो वर्ष बीतते हैं कि वह ऊब जाता है। क्यों? वह जो अज्ञात रहस्यपूर्ण था, इधर दो वर्ष साथ रहने में उसे यह भ्रम पैदा हो गया कि वह खत्म हो गया, मैंने जान लिया कि स्त्री क्या है। जैसे ही उसे ख्याल आता है कि मैंने पहचान लिया यह स्त्री क्या है, जान लिया यह स्त्री क्या है, वह रहस्य का भाव विलीन हो गया, वह अज्ञात सौंदर्य आंख से ओझल हो गया। अंग्रेजी का कवि था, बायरन। उसने अपनी जिंदगी में, कहते हैं कि जितनी स्त्रियों को प्रेम किया उतना शायद ही किसी व्यक्ति ने कभी किया होगा। विवाह करने को वह कभी राजी नहीं हुआ। सारा देश उसे लंपट मानता था। लेकिन एक स्त्री ने उसे अंततः मजबूर कर लिया विवाह करने को। जिन स्त्रियों से भी बायरन का प्रेम हो जाता, बायरन अपूर्व सुंदर था, प्रतिभाशाली था; उसके काव्य का कोई मुकाबला न था, उसमें कुछ खूबियां थीं, बड़ी खूबियों का आदमी था। इसलिए कोई भी स्त्री मोहित हो जाए यह आश्चर्यजनक नहीं था। लेकिन जो भी स्त्री मोहित होती थी, उसके हाथों में गिर जाती थी। दिन दो दिन में वह आदमी ऊब जाता था उस स्त्री से। एक स्त्री ने उसे मजबूर कर दिया। बायरन उसका हाथ भी नहीं छू सका, उसने कहा, पहले विवाह, फिर मेरा हाथ छू सकोगे। बायरन बड़ी मुश्किल में पड़ गया।
आखिर उसे राजी होना पड़ा उस स्त्री से विवाह करने के लिए। और जिस दिन
वह चर्च से उतरता था, उस स्त्री से विवाह करके सीढ़ियों से उतरता था, लोग अभी विदा हो रहे थे, चर्च की घंटियां अभी बज रही थीं और उसके स्वागत में जलाई गई मोमबत्तियां अभी जल रही थीं, वह सीढ़ियों से अपनी पत्नी का हाथ पकड़े हुए नीचे उतर रहा था। गाड़ी में पत्नी को बिठाया और अपनी पत्नी से बोला, बस सब समाप्त हो गया।

उसकी पत्नी ने कहाः मतलब?
उसने कहाः कल तक तुम जब पराई थीं और मेरा तुम पर कोई कब्जा नहीं था, मैं पागल हो रहा था, और आज जब मैं तुम्हारे हाथ को हाथ में लेकर उतर रहा हूं, तो सब फीका हो गया। मुझे ऐसा लग रहा कि ठीक है, आज मेरे प्राणों में कोई आकर्षण नहीं मालूम हो रहा है, कोई उद्दाम वेग नहीं मालूम हो रहा है, यह क्या हो गया? यह सब राख-राख मालूम पड़ रहा है और अभी एक घड़ी पहले तक मैं दीवाना था। और अगर अभी तुम मेरी पत्नी न होकर किसी और की पत्नी होकर चर्च से उतर रही होती, तो मैं शायद पागल हो जाता कि मुझे यह स्त्री कैसे मिल जाए? लेकिन अब सब ठंडा हो गया और सब शांत हो गया।
उसकी स्त्री शायद ही समझ सकी होगी कि यह बायरन क्या कहता है। और दुनिया में मुश्किल से थोड़े ही लोग होंगे जो समझ सकें कि यह क्या कह रहा है। लेकिन मैं आपसे कहना चाहूंगा कि यह यह कह रहा है कि जीवन में आकर्षण और प्रेम वहीं हैं जहां रहस्य है और अज्ञात है। और जहां चीजें ज्ञात हो जाती हैं और रहस्य खुल जाते हैं, और सब चीजें साफ हो जाती हैं, एक्सप्लेनेशंस मिल जाते हैं, वही प्रेम और आकर्षण विलीन हो जाता है।
लेकिन मेरा कहना यह है कि जीवन इतना रहस्यपूर्ण है कि मनुष्य लाख उपाय करे, तो भी उसका रहस्य समाप्त नहीं होता। और जीवन इतना अज्ञात है कि वह सिर पीट-पीट कर मर जाए, तो भी उसे ज्ञात नहीं बना सकता। इसलिए जिसके जीवन में रहस्य के पर्दे खुल जाते हैं और आंखें खुल जाती हैं, वह रोज-रोज पाता है कि जीवन और रहस्यपूर्ण होता जाता। वह रोज-रोज पाता है, जीवन और अज्ञात, और अननोन होता चला जाता है। वह रोज-रोज पाता है, जीवन मुट्ठी से छूटता चला जाता है, मुट्ठी खुलती चली जाती है। उसके भीतर प्रेम के और आकर्षण का जन्म विकसित होता है।

जिसके जीवन में रहस्य आता है, उसके जीवन में प्रेम आता है। कोई प्रेम कोशिश कर-कर के नहीं ला सकता। कोई सोचता हो कि प्रेम करें सबको, इससे प्रेम नहीं कर सकता। चाहे कोई कितनी ही शिक्षा दे कि अपने शत्रुओं को प्रेम करो, सच्चाई यह है कि लोग अपने मित्रों को भी प्रेम करने में सफल नहीं हो पाते हैं; शत्रुओं को प्रेम करना दूर की बात है। मित्रों को प्रेम करना ही बहुत कठिन है।
प्रेम करने में इसलिए सफल नहीं हो पाते कि जीवन में रहस्य का कोई बोध
ही नहीं है। जिसके बिना प्रेम कभी पैदा नहीं होता। प्रेम तो प्राणों की वह तीव्र भाव-दशा है जो रहस्य को जानने के लिए आंदोलित हो उठती है। इसलिए मैं नहीं कहता हूं कि आप प्रेम करें, मैं कहता हूं, जीवन में रहस्य को आने दें। द्वार खोल दें, ज्ञान की झूठी बातें हटा दें। रहस्य को आने दें और आप रहस्य की छाया की भांति पाएंगे कि हृदय प्रेम से भर रहा है। वह प्रेम जब समस्त जीवन के प्रति आंदोलित हो उठता है, तो उसे हम प्रार्थना कहते हैं। उसे मैं प्रार्थना कहता हूं। जब एक पत्ती भी हिलती है और आपके प्राणों में कोई कंपित होता है। और जब हवा का झोंका चलता है, तब भी आपके भीतर कोई कंपित होता है। और जब धूल का बवंडर उठता है, तब भी आपके भीतर कोई रहस्य से जाग उठता है और पूछने लगता है, क्या है? क्या है? और कुछ सूझ नहीं पड़ता, कुछ बुझ नहीं पड़ता, और बुद्धि ठगी रह जाती है, और प्राण प्यासे जानने को आतुर रह जाते हैं। वही है अवस्था प्रेम की। वही है अवस्था सबसे जुड़ जाने की। प्रेम हृदय को भर देगा, अगर बुद्धि को आप ज्ञान से मुक्त कर दें। बुद्धि अगर झूठे ज्ञान से मुक्त हो जाए, तो हृदय सच्चे प्रेम से भर जाएगा। पंडित कभी प्रेमी नहीं हो पाता। और अजीब लोग हुए हैं, कबीर ने कहा हैः ढाई अक्षर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय। अजीब बात कहीं है! कि प्रेम के ढाई अक्षर जो पढ़ ले, तो पंडित हो जाए। नहीं कहा कि वेद पढ़ ले, चारों संहिताएं कंठस्थ कर ले, तो पंडित हो जाए। नहीं कहा कि उपनिषद पढ़ ले सब, तो पंडित हो जाए। नहीं कहा कि गीता कंठस्थ हो, तो पंडित हो जाए। कहा कि ढाई अक्षर प्रेम के! तो लिख लो कागज पर ढाई अक्षर और पढ़ते रहो रोज सुबह उठ कर, तो पंडित हो जाओगे।

नहीं, कोई प्रेम का अक्षर पढ़ने से पंडित नहीं हो जाएगा। लेकिन हां, प्रेम को कोई पढ़ ले तो जरूर, जरूर, एक, एक ज्ञान का जन्म होता है। जो बुद्धि का ज्ञान नहीं है, जो समग्र प्राणों के और पूरे आत्मा का जानना है। और इस प्रेम का जन्म होता है रहस्य से। तो बाहर, जो सब तरफ फैला हुआ विराट जगत है, जो अस्तित्व है, जो एक्झिस्टेंस है, उसके प्रति रहस्य का बोध। और हमारा रहस्य का बोध एकदम कुंठित है।
अमरीका में कोई बीस साल पहले लुथर बरबांक नाम का एक वैज्ञानिक था। वनस्पति शास्त्री था। पौधों के साथ ही जीवन भर रहा। पौधों के साथ जीवन भर रहा। अपने मित्रों को उसने एक दिन कहा कि मैं एक बात बताना चाहता हूं, पौधे भी बोलते हैं। उसके मित्र बहुत हैरान हुए, उन्होंने कहाः क्या कहते हो? क्या पौधों के साथ रहते-रहते, पौधों की खोज करते-करते दिमाग खराब हो गया, पौधे बोलते हैं?
उसने कहाः हां। ऐसा मुझे लगता है कि पौधे बोलते हैं। ऐसा मुझे लगता है
कि पौधे समझते हैं। ऐसा मुझे लगता है कि पौधों से कुछ कहा जा सकता है। उसके मित्रों ने कहा कि अगर तुम्हारा दिमाग दुरुस्त है, तो कुछ करके दिखाओ, तो हम समझें।
उसने एक प्रयोग किया। जो कि मनुष्य-जाति में एकदम अनूठा प्रयोग था।
वह एक कैक्टस के पौधे को रेगिस्तान से लाया। उस कैक्टस के पौधे में कांटे ही कांटे होते हैं। और उसमें बिना कांटों की कभी कोई जाति नहीं होती। उस कैक्टस के पौधे में। वह उस कैक्टस के पौधे से रोज सुबह-शाम कहने लगा कि मेरे मित्र, क्या मेरी आवाज तुम तक पहुंचती है? क्या मेरा प्रेम तुम तक पहुंचता है? उसके मित्र तो थोड़े दिन में छोड़ दिए उसका साथ। सड़क पर लोगों ने उसे पहचानना बंद कर दिया। क्योंकि पागलों से दोस्ती करनी ठीक नहीं। खुद भी पागल होने का डर होता है। उसकी पत्नी ने उसे तलाक दे दिया। अदालत को कह कर कि इसका दिमाग खराब हो गया है, यह पौधों से बातें करता है।
लेकिन वह अटूट हिम्मत का आदमी होगा, लगा रहा। और उसने उस पौधे को कहा
कि लेकिन मैं कैसे समझूंगा कि तुमने मेरी बात समझी, तुमने मुझे सुना, मेरे प्रेम को पहचाना, मैं कैसे समझूंगा? मुझे कुछ सबूत दो। सबूत मुझे यह दो कि एक ऐसी शाखा पैदा करो जिसमें कांटे न हों। उस पौधे से वह कहने लगा कि तुममें एक ऐसी शाखा निकले जिसमें कांटे न हों। अब यह कहीं हो सकता था! उस पौधे में बिना कांटे की शाखा होती ही नहीं। लेकिन सारा अमरीका दंग रह गया, पांच साल के निरंतर प्रयत्न से उस पौधे में एक शाखा निकल आई जिसमें कांटे नहीं थे। वह निरंतर उस पौधे से कहता रहा सुबह और सांझ, उस पौधे की सेवा करता रहा, उस पौधे को प्रेम करता रहा, उस पौधे को पानी सींचता रहा, उसकी हिफाजद करता रहा। रोज सुबह और सांझ उससे कहता रहा कि मेरे मित्र, अगर मेरा प्रेम तुम तक पहुंचता है तो कोई सबूत दो, सबूत यह दो कि तुममें एक शाखा निकले, जिसमें कांटे न हों। उसमें एक शाखा निकली।
क्या हुआ होगा पौधे के प्राणों में? क्या हुआ होगा उस कैक्टस के प्राणों में इस आदमी की प्रेम का और प्रार्थनाओं का? इसके निवेदन का कोई परिणाम हुआ होगा। उस पौधे के प्राण और आत्मा तक कोई बात गई होगी, पहुंची होगी। वह पौधा आंदोलित हुआ होगा। उस पौधे ने जाना होगा, मित्रता को, प्रेम को पहचाना होगा, तभी तो वह शाखा निकली, नहीं तो वह शाखा कैसे निकलती। वह जो द्वार पर पौधा खड़ा है, उसके पास भी आत्मा है, उसके भीतर भी परमात्मा है। वे जो राह के किनारे पत्थर पड़े हैं, वे भी जीवन से आपूरित हैं, उनके भीतर भी कोई सोया है। चारों तरफ एक चैतन्य का विस्तार है।
लेकिन जिसकी आंखें हृदय से संबंधित हो जाती हैं, केवल बुद्धि से संबंधित नहीं रहतीं, और जिसके प्राण प्रेम से भर उठते हैं और रहस्य से भर जाते हैं, उसे जीवन में चारों तरफ चैतन्य का दर्शन होने लगता है। हृदय में रहस्य न हो, तो संसार में पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और हृदय में रहस्य हो, तो संसार में परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। बुद्धि कितना ही जाने, वह मुर्दा विचारों से ज्यादा आगे कभी नहीं पहुंच पाएगी। विचार मुर्दा होते हैं, प्रेम जिंदा होता है। इसलिए विचार के द्वारा परमात्मा को कभी नहीं जाना जा सकता, केवल पदार्थ को जाना जा

सकता है। लेकिन प्रेम लिविंग है, प्रेम जिंदा है। विचार तो मुर्दा होते हैं। इसलिए प्रेम के आंदोलन में जिसे जाना जा सकता है, वही जीवित होगा, जीवंत होगा।
रहस्य प्रेम लाता है। लेकिन मैं यह नहीं कहता हूं कि आप रहस्य को कल्टीवेट करें। कि आप जबरदस्ती प्रेम करने लगें। जबरदस्ती का प्रेम खतरनाक है, झूठा है, अर्थ का नहीं है। तो मैं आपसे नहीं कहता, जाकर भगवान की मूर्ति को प्रेम करें। जो भगवान की मूर्ति को प्रेम करने गया है वह तो सबूत दे रहा है इस बात का कि उसे सारी दुनिया में भगवान दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए एक मूर्ति में खोजने गया। और जिसे मूर्ति में खोजना पड़ता है, वह पक्का जान ले, उसे कहीं दिखाई नहीं पड़ेगा कभी भी। इतना जीवंत विस्तार है, उसमें जिसे भगवान का अनुभव नहीं होता, उसे मूर्ति में क्या अनुभव होगा। हां, यह सच है कि जिसे सबमें दिखाई पड़ने लगे, उसे मूर्ति में भी दिखाई पड़ने लगेगा। लेकिन कोई मूर्ति में देखना चाहे तो उसे तो कहीं भी दिखाई नहीं पड़ेगा। सब तरफ है उसका विस्तार, लेकिन देखने की कोशिश से नहीं होगा। पहले रहस्य, पीछे प्रेम। बिना रहस्य के प्रेम नहीं हो सकता। और अगर हम जबरदस्ती सिखाएं कि प्रेम करो, प्रेम करो, भक्ति करो, पूजा करो, सब झूठी हो जाती है। सब झूठी हो जाती है। और उसके परिणाम घातक आते हैं। उसके परिणाम ये आते हैं कि झूठे प्रेम से न तो आनंद मिलता, न झूठी भक्ति से, न झूठी सेवा से। और जब आनंद नहीं मिलता है, इस संसार से भी आनंद नहीं मिलता है, इस भक्ति से, सेवा से, प्रार्थना से भी आनंद नहीं मिलता, तो जीवन एकदम बोझिल हो जाता है, पंगु हो जाता है। चीजें टूट जाती हैं, भीतर से आशा नष्ट हो जाती है कि कुछ मिल सकेगा। लेकिन अब तक बिना रहस्य को पैदा किए, प्रेम, प्रार्थना और सेवा की बातें कही गई हैं।
धर्म हैं, जो सिखाते हैंः लोगों की सेवा करो। लेकिन सेवा कैसे हो सकती
है जब तक प्रेम न हो। और अगर बिना प्रेम के सेवा होगी, तो वह सेवा केवल अहंकार का पोषण करेगी और कुछ भी नहीं। और वह सेवा मिस्चिवियस भी हो सकती है। वह सेवा उपद्रवी भी हो सकती है।
एक चर्च में एक पादरी ने आकर बच्चों को समझाया कि तुम रोज सेवा का थोड़ा-बहुत कार्य किया करो। क्योंकि बिना सेवा के प्रेम नहीं होगा, और बिना प्रेम के परमात्मा नहीं मिलेगा। उन बच्चों ने पूछा कि हम कैसी सेवा करें? तो उसने कुछ बातें बताईं। कि कोई डूबता हो तो उसको बचा लो। कोई बूढ़ा आदमी रास्ता पार न कर पाता हो तो उसको रास्ता पार करवा दो। कोई गिर पड़ा हो तो उसको उठा लो। किसी का दुख हो तो उसको दूर करो। इस भांति सेवा करो।
सात दिन बाद वह पादरी वापस लौटा, उसने बच्चों से पूछा, तुमने कोई सेवा की? तीन बच्चों ने हाथ उठाए कि हमने सेवा की। वह बहुत खुश हुआ। उसने कहाः कम से कम तीन बच्चों ने सेवा की, यह भी क्या कम है! मेरे प्यारे बच्चो, कौन सी सेवा तुमने की? तो एक लड़के से पूछा, तुमने क्या किया?
उसने कहाः मैंने एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया।
उसने कहाः बहुत ठीक!
दूसरे से पूछा। उसने कहाः मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया।
वह थोड़ा हैरान हुआ। सोचा, लेकिन संयोग की बात है, उसने भी करवाया होगा।
उसने कहाः बहुत ठीक!
तीसरे से पूछा। उसने कहा कि मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया।
तो वह थोड़ा चिंतित हुआ। उसने पूछा कि क्या तुम तीनों को तीन बूढ़ी औरतें मिल गईं रास्ता पार करवाने को?
उन्होंने कहाः तीन नहीं, बूढ़ी औरत तो एक ही थी, हम तीनों ने मिल कर पार करवाया।
उसने कहाः हद्द हो गई। क्या बहुत भीड़-भाड़ थी? क्या बूढ़ी स्त्री बिल्कुल चलने में असमर्थ थी कि तुम तीन की जरूरत पड़ी उसको रास्ता पार करवाने में?

उन्होंने कहाः नहीं, न तो रास्ते पर भीड़ थी, भीड़ बल्कि बिल्कुल नहीं थी। कोई था ही नहीं रास्ते पर, वह अकेली बूढ़ी औरत थी। और बूढ़ी औरत बहुत कमजोर भी नहीं थी। कमजोर होती तो एक ही पार करवा देता। बहुत तगड़ी थी, बड़ी मुश्किल से हम तीनों मिल कर पार करवा पाए, वह पार होना ही नहीं चाहती थी। वह पार होने को राजी ही नहीं थी। वह तो हमें सेवा का कार्य करना था, इसलिए मजबूरी में करना पड़ा।
दुनिया भर के सेवक इसी तरह के काम कर रहे हैं। ये जो सेवक हैं, समाज-सेवक, और जमाने भर के सेवक हैं, ये इसी तरह के काम कर रहे हैं। ऐसे लोगों को पार करवा देते हैं जो पार ही नहीं होना चाहते। ऐसे लोगों को डूबा कर निकालते हैं जो डूबे ही नहीं थे। सारी दुनिया में सेवकों ने जितना उपद्रव किया है उतना किसी और ने नहीं। इनसे ज्यादा मिस्चिफ मांगर्स और कोई भी नहीं है। और मिस्चिफ इसलिए पैदा होती है, उपद्रव इसलिए पैदा होता है कि हृदय में तो कोई प्रेम नहीं है और सेवा करना है। और सेवा इसलिए करनी है कि बिना सेवा के परमात्मा नहीं मिलेगा। और सेवा इसलिए करनी है कि बिना सेवा के परलोक में मेवा नहीं मिलता। और सेवा इसलिए करनी... और न मालूम क्या-क्या कारण हैं उनके सेवा करने के। प्रेम उनका कारण नहीं है। इसलिए जबरदस्ती सेवा हो रही है। और यह जबरदस्ती सेवा खतरनाक सिद्ध हो रही है।
तो मैं नहीं कहता कि आप कोई ऐसा प्रेम करने लगें। भूल कर किसी से जबरदस्ती प्रेम नहीं करना। नहीं तो उसके गले की फांसी लग जाती है जिससे आप प्रेम करते हो। और अक्सर ऐसा होता है कि जिनसे हम प्रेम करते हैं उनके गले पर फांसी लगा देते हैं। यानी वे पीछे पछताते हैं कि हमसे कैसे छुटकारा हो। जनम-मरण से छुटकारा पाने के लिए जैसी आत्मा आकुल होती है, ऐसे ही प्रेम से छुटकारा पाने के लिए भी आकुल हो जाती है। जो प्रेम झूठा होता है वह फंदा बन जाता है गले पर। किसी से झूठा प्रेम मत करना। लेकिन अगर जीवन में रहस्य का जन्म हो, तो प्रेम का जन्म अनिवार्य है। और एक बात स्मरण रख लें, जब रहस्य का जन्म होता है तो प्रेम किसी एक के प्रति पैदा नहीं होता। प्रेम अगर एक के प्रति पैदा हो तो जानना कि वह प्रेम प्रार्थना नहीं है। जब जीवन में रहस्य का बोध होता है, तो समग्र जीवन के प्रति प्रेम का जन्म होता है। किसी एक के प्रति नहीं, समग्र के प्रति। प्रेम तब एक रिलेशनशिप नहीं होती, एक संबंध नहीं होता, स्टेट ऑफ माइंड होती है, प्रेम तब चित्त की एक दशा होती है।
जैसे एक दीये को हम जला दें, तो दीया यह नहीं कहता कि मैं फलां आदमी के लिए प्रकाश दूंगा और फलां के लिए नहीं दूंगा। दीया जलता है, जो भी आ जाए, सभी को प्रकाश मिलता है। और कोई न आए, तो निर्जन में, एकांत में भी प्रकाश पड़ता रहता है। ऐसे ही जब चित्त में रहस्य का जन्म होता है, तो प्रेम का दीया जलता है। वह प्रेम यह नहीं कहता कि मैं तुमको प्रेम करूंगा और तुमको नहीं करूंगा। वह प्रेम कोई च्वाइस नहीं करता। वह प्रेम दीये की भांति जलता है। जो भी उसके निकट आता है उस पर प्रेम पड़ता है। और कोई न आए तो निर्जन एकांत में भी प्रेम झरता है। वह प्रेम चौबीस घंटे चित्त से विकीर्ण होता रहता है। वैसा प्रेम प्रार्थना है। और वैसा प्रेम जब आता है, तो चित्त एकदम शून्य हो जाता है।
रहस्य से प्रेम का जन्म होता है, प्रेम से शून्यता आ जाती है। अगर जीवन में क्षण भर को भी कभी प्रेम अनुभव किया हो तो यह पाया होगा कि मन एकदम शून्य हो जाता है प्रेम में। साधारण प्रेम में भी मन शून्य हो जाता है। एक प्रेमी जब अपने प्रेम करने वाले के पास बैठता है तो मन शून्य हो जाता है। उसे समझ में नहीं आता मैं क्या कहूं क्या न कहूं? उसने बहुत सी बातें सोची होंगी कि जिसे मैं प्रेम करता हूं, जब वह मिलेगा तो उससे मैं यह कहूंगा, यह कहूंगा, यह कहूंगा, लेकिन जब वह प्रेम करने वाले के पास जाता है तो पाता है सारी वाणी खो गई, सारे शब्द खो गए, कुछ कहने को नहीं सूझता, कुछ बोलने को नहीं सूझता, चुप और मौन हो जाता है, क्योंकि भीतर सब शून्य हो जाता है। साधारण प्रेम में भी चित्त क्षण भर को शून्य की अवस्था में पहुंचता है। और मैं आपसे कह दूं, प्रेम जो आनंद मिलता है, वह प्रेम का नहीं है, वह जो चित्त थोड़ी देर को शून्य हो जाता है उसका ही आनंद है।

तो जिसका हृदय सबके प्रति प्रेम से भर जाता है, उसका हृदय सब भांति शून्य हो जाता है। और उस शून्य में ही, उस सब भांति शांत हो गए चित्त में ही आनंद का आविर्भाव होता है, आनंद का जन्म होता है। आनंद तो सब तरफ है, लेकिन शून्य चित्त ही उसे अपने में भरने में समर्थ हो पाता है। इस शून्यता में अहंकार खंडित हो जाता है और टूट जाता है। क्योंकि वही तो मन को भरे हुए है। वही तो मन को भरे हुए है कि मैं कुछ हूं। प्रेम जानता है, मैं ना-कुछ हूं, मैं कुछ भी नहीं। अहंकार जानता है, मैं कुछ हूं। अहंकार समबडी बनाता है, कुछ बनाता है। प्रेम नो-बडी बना देता है, ना-कुछ बना देता है। प्रेम तोड़ देता है अहंकार की प्रतिमा को। मैं का भ्रम टूट जाता है। और जहां अहंकार है वहां प्रेम नहीं और जहां प्रेम है वहां अहंकार नहीं। प्रेमी जानता है मैं नहीं हूं। अनुभव करता है भीतर कुछ भी नहीं है, सब शांत और शून्य हो गया।
यह जो शून्यता है--रहस्य से प्रेम; प्रेम से शून्यता। इस शून्यता में ही, इस शून्यता में ही...
लाओत्सु ने कहा हैः धन्य हैं वे लोग जो खाली हैं, क्योंकि परमात्मा उन्हें भर देगा। और अभागे हैं वे लोग जो भरे हुए हैं, क्योंकि वे परमात्मा से खाली रह जाएंगे। वही भरता है परमात्मा से जो अपने तईं खाली हो जाता है। प्रेम खाली करता है। और एक ऐसा खालीपन और एक ऐसा वाइड, एक ऐसा शून्य निर्मित हो जाता है जहां कुछ भी नहीं होता। एक शांति, एक सन्नाटा, एक मौन और कुछ भी नहीं। उस मौन में ही सुनी जाती है वह वाणी जिसे हम परमात्मा की कहें, वह ध्वनि जिसे हम परमात्मा की कहें, उस खालीपन में ही अनुभव किया जाता है वह भरावट जो परमात्मा की है। उस सन्नाटे में ही उस संगीत को सुना जाता है जो परमात्मा का है। मनुष्य के सामने शून्य होने के अतिरिक्त पूर्ण को पाने का और कोई द्वार नहीं है। मनुष्य के समक्ष शून्य होने के अतिरिक्त पूर्ण को पाने का और कोई मार्ग नहीं है। मनुष्य मिट जाए तो परमात्मा हो आता है। मनुष्य टूट जाए, समाप्त हो जाए, तो उसका आगमन हो आता है। इस मूल्य पर ही उसका मिलन है। इस कीमत पर ही, इस सौदे पर ही।
एक छोटी सी घटना और आज की चर्चा में पूरी करूंगा।
एक पहाड़ी के किनारे जापान के किसी गांव में एक साधु खड़ा हुआ था। तीन मित्र सुबह-सुबह घूमने निकले थे। उन्होंने उस साधु को पहाड़ी की टेकड़ी पर खड़े हुए देखा। उनके मन में ख्याल उठा कि यह साधु सुबह-सुबह वहां खड़े होकर क्या करता है? कोई जरूरत न थी उन्हें इस बात को सोचने की। लेकिन हम सभी लोग गैर-जरूरत बातें सोचते हैं, उन्होंने भी सोचा, तो क्षमा कर देना। गैर-जरूरत बात थी, कोई मतलब न था कि साधु क्या करता है। कोई भी क्या करता हो, क्या लेना-देना था। लेकिन हम सभी इसी तरह की बातें सोचते हैं कि कौन क्या करता है, कौन क्या नहीं करता। हमारे जैसे ही वे तीनों लोग भी रहे होंगे। उन्होंने भी यह सोचा, तो उन्हें क्षमा कर देना। न केवल यह सोचा बल्कि उनमें से एक ने कहा कि मैं तो समझता हूं, उस साधु की गाय कभी-कभी खो जाती है, तो वह टेकड़ी पर खड़े होकर देखता है कि मेरी गाय कहां खो गई। बाकी दो ने कहा कि गलत। यह बात सरासर गलत है। क्योंकि वह आदमी जिस भांति खड़ा है, न तो सिर हिलाता है, न इधर-उधर देखता है, इससे पता चलता है वह कुछ खोज नहीं रहा, गाय-वाय नहीं खोज रहा। दूसरे मित्र ने कहाः मैं तो समझता हूं, कोई मित्र उसके साथ आया होगा घूमने, वह पीछे छूट गया, वह खड़े होकर उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। तीसरे मित्र ने कहाः गलत, एकदम गलत। उसे देख कर ऐसा नहीं लगता कि वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा है, उसने एक भी दफे पीछे लौट कर नहीं देखा, प्रतीक्षा करने वाला कभी-कभी लौट कर पीछे भी देखता है। तो मैं तो यह समझता हूं कि न तो वह गाय खोज रहा है, न मित्र की प्रतीक्षा कर रहा है, वह शायद परमात्मा की प्रार्थना कर रहा है वहां खड़े होकर।
निर्णय होना कठिन हो गया। जैसे कि हर मसला कठिन हो जाता है। आखिर उन तीनों ने सोचा कि चलो हम चले चलें और उस साधु से ही पूछ लें कि तुम यहां क्या कर रहे हो। विवाद बहुत बढ़ गया। और विवाद की गर्मी में आदमी कितनी ही दूर चला जाता है, तो वे भी पहाड़ी चढ़ कर उतनी दूर चले गए। जाकर उन्होंने उस

साधु को पूछा। पहले मित्र ने पूछा कि महानुभाव, आप यहां क्या कर रहे हैं? क्या आपकी गाय खो गई है, उसको आप खोजते हैं?
उस साधु ने कहाः गाय? किसकी गाय? कैसी गाय? मेरा तो कुछ भी नहीं है, खोएगा क्या? मैं किसी को नहीं खोज रहा हूं, मेरा कुछ भी नहीं खो गया। दूसरे मित्र ने कहाः तब ठीक, हमारा भी यही ख्याल था कि आप कुछ खोज नहीं रहे। निश्चित ही कोई मित्र आपके साथ आया होगा जो पीछे छूट गया, आप उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।
उस साधु ने कहाः नहीं, न मेरा कोई मित्र है, न मेरा कोई शत्रु। मैं किसी की प्रतीक्षा नहीं कर रहा हूं।
तीसरे ने कहा कि बिल्कुल ठीक, तब तो बात बिल्कुल तय हो गई कि आप परमात्मा का स्मरण कर रहे हैं, परमात्मा की प्रार्थना कर रहे हैं।
उस साधु ने कहा कि मैं नहीं जानता कौन परमात्मा है। मैं किसी की प्रार्थना नहीं कर रहा हूं। तो वे तीनों घबड़ा गए और उन्होंने पूछा कि फिर आप क्या कर रहे हैं?
उस फकीर ने कहाः आई एम जस्ट एक्झेस्टिंग। मैं कुछ कर नहीं रहा हूं, मैं केवल हूं। मैं कुछ कर नहीं रहा हूं, मैं केवल हूं। क्या अर्थ हुआ इस बात का कि मैं केवल हूं?
जो आदमी रहस्य से भर जाता है, और जिस आदमी के जीवन में प्रेम का अवतरण होता है, वह केवल रह जाता है, बस रह जाता है, होता है, कुछ करता नहीं। उसके चित्त में एक परम शांति, एक परम मौन, और मात्र होना रह जाता है। ऐसी जो अवस्था है, इसी में जाना जाता है परमात्मा, इसी में जाना जाता है सत्य, इसी में जाना जाता है स्वयं की निजता का अस्तित्व, स्वयं का होना। और जो ऐसी स्थिति में पहुंच जाता है उसे जीवन की कृतार्थता और सार्थकता उपलब्ध हो जाती है।
इससे ज्यादा अभी इस सुबह कुछ नहीं कहूंगा। चाहूंगा कि इस शून्य पर थोड़ा सोचते हुए जाएं। चाहूंगा कि इस शून्य का स्वाद किसी दिन उपलब्ध हो। हो सकता है, निश्चित हो सकता है। लेकिन रहस्य से शुरू करना पड़ेगा, तो क्रमशः रहस्य, प्रेम और शून्य का जन्म होता है। और जहां शून्य है वहीं सब कुछ प्रकट हो जाता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए पुनः-पुनः धन्यवाद। परमात्मा करे कि शून्य कर दे, ताकि पूर्ण की संपदा उपलब्ध हो जाए। सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा के प्रति मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सत्य की प्यास
छठवां प्रवचन

अभय

मेरे प्रिय आत्मन्!
सत्य की खोज में पिछले तीन दिनों से कौन सी भूमिकाएं आवश्यक हैं, कौन
सी शर्त पूरी करनी होगी, स्वतंत्रता, सरलता और शून्यता की तीन सीढ़ियों पर मैंने आपसे बात की। इस संबंध में बहुत से प्रश्न उठे हैं, कुछ प्रश्नों पर भी मैंने अपना विचार आपको कहा। अभी भी बहुत से प्रश्न बाकी हैं, उनमें से कुछ पर अभी आपसे चर्चा करूंगा।
मनुष्य का चित्त स्वतंत्र न हो, तो सत्य को कभी भी नहीं जान सकता है।
इस संबंध में ही बहुत से प्रश्न आए हैं।
हमारी सोचने की जो गुलाम पद्धति है, सोचने का जो परतंत्र रास्ता है,
हर चीज के लिए दूसरे की तरफ देखने की जो आदत है, उसके कारण ही ये सारे प्रश्न उठते हैं। मनुष्य साधारणतः उधार विचारों पर जीता है। बारोड, दूसरों से लिए हुए विचारों पर जीता है। उसके अपने कोई विचार नहीं होते, उसकी अपनी कोई मौलिक चिंतना नहीं होती।
यदि मैं आपसे कहूं कि कभी अपने विचारों पर ध्यान करें और देखें कि कोई एकाध विचार भी आपने अपने जीवन में जाना है और जीआ है? कोई एकाध विचार भी आपका अपना है? शायद आपको पता चले कि एक भी विचार मेरा अपना नहीं। और जिसके सब विचार उधार हों, अगर उसकी आत्मा दरिद्र रह जाए, तो इसमें कसूर किसका है? अगर उसका जीवन आंतरिक रूप से खोखला, थोथा और खाली-खाली हो, तो जिम्मेवारी किसकी है? एक भी विचार अपना न हो, यह ऐसे ही है जैसे कोई किसी दूसरे की संपत्ति को गिनता रहे। गिनती तो अपनी हो और संपत्ति दूसरे की हो। तो वैसी गिनती से कोई समृद्ध बनेगा? कोई समृद्धि आएगी?
विचार के जगत में भी हम दूसरों के विचारों की गिनती करते रहते हैं। गीता में क्या है, और कुरान में, और बाइबिल में। और कौन महापुरुष ने क्या कहा है इसको तो स्मरण कर लेते हैं, लेकिन कभी क्या इस बात को सोचा कि जो विचार मेरा नहीं है वह जीवंत नहीं हो सकता, लिविंग नहीं हो सकता, वह मुर्दा और जड़ होगा। और यदि मस्तिष्क में सब मुर्दा विचार इकट्ठे हो जाएं, तो आदमी जीते जी जीवन को खो दे तो इसमें आश्चर्य क्या है! हम सारे लोग करीब-करीब मुर्दों को भांति जीते हैं। क्योंकि जीवन की को चिनगारी, कोई स्वतंत्र चिंतन का जन्म हमारे भीतर नहीं होता। हम देखने को जीवित मालूम होते हैं, लेकिन हमारा चित्त बिल्कुल मुर्दा है। चित्त मुर्दा है इसलिए, यह जो माइंड है हमारा यह डेड, यह मुर्दा है इसलिए कि हम केवल उधार विचारों को संगृहीत किए हुए हैं।
उधार विचार से ज्ञान नहीं आता। उधार विचार से केवल स्मृति भर जाती है, मेमोरी भर जाती है। मेमोरी और नालेज में, ज्ञान और स्मृति में बहुत फर्क है। स्मृति तो एक यांत्रिक व्यवस्था है। हम कुछ भी सीख कर स्मृति में इकट्ठा करते चले जाते हैं। यह इकट्ठा हुआ, न तो ज्ञान है और न जीवित है। एक छोटी सी कहानी कहूं।
जीसस क्राइस्ट एक झील के पास से निकलते थे। उस झील में सुबह-सुबह मछुए मछलियां मार रहे थे। एक जवान मछुए के कंधे पर जीसस क्राइस्ट ने हाथ रखा और कहा, मेरे मित्र, कब तक मछलियां ही मारते रहोगे? जिंदगी में कुछ और भी करने जैसा नहीं दिखाई पड़ता? कहा कि कब तक मछलियों पर ही जाल फेंकते रहोगे? मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें उस सागर में जाल फेंकना सिखा दूंगा जहां परमात्मा भी फंस जाता है। वह मछुआ भी अजीब हिम्मत का आदमी रहा होगा। इतनी हिम्मत के लोग बहुत कम होते हैं। और जिन लोगों में इतनी हिम्मत नहीं होती, उनके जीवन में कभी धर्म का अवतरण भी नहीं होता। वह बड़ी हिम्मत का और साहस का आदमी रहा होगा। उसने जाल जो पानी में फेंका था उसे पानी में ही छोड़ दिया, क्राइस्ट के पीछे हो लिया। वे गांव के बाहर भी नहीं पहुंच पाए थे। गांव से कोई आदमी दौड़ता हुआ आया और उसने उस मछुए को कहाः तू कहां जा रहा है? तेरा पिता जो

बीमार था, अभी-अभी उसकी श्वासें टूट गईं, वह समाप्त हो गया, मर गया, घर वापस चलो।
उस मछुए ने क्राइस्ट से कहाः मुझे दो-चार दिन की छुट्टी दे दें, मैं अपने पिता का अंतिम संस्कार कर आऊं और फिर वापस लौट आऊंगा।
क्राइस्ट ने कहाः जाना हो तो जाओ। वैसे मैं कोई जरूरत नहीं देखता हूं। क्योंकि गांव में बहुत मुर्दे हैं वे उस मुर्दे को दफना लेंगे, तुम बहुत परेशान मत होओ। लेट दि डेड वरि दि डेड। क्राइस्ट ने कहाः मुर्दे हैं उनको दफना लेने तो मुर्दे को, तुम परेशान मत होओ।
वह बहुत हैरान हुआ। उसने कहाः गांव में मुर्दे! क्या आप सारे लोगों को मुर्दा समझते हैं?
क्राइस्ट समझते होंगे सारे लोगों को मुर्दा। क्यों समझते होंगे मुर्दा? जिनके चित्त उधार हैं वे जीवित नहीं हो सकते।
एक सुबह बुद्ध के पास एक अस्सी वर्ष का बूढ़ा भिक्षु आया। बुद्ध ने पूछाः तेरी उम्र क्या है?
उस भिक्षु ने कहाः पांच वर्ष!
बुद्ध हैरान हुए। और भी भिक्षु थे वे हैरान हुए। अस्सी वर्ष का बूढ़ा था। उसने कहाः पांच वर्ष!
बुद्ध ने पूछाः में समझ नहीं पाया, दुबारा कहो।
उस बूढ़े आदमी ने कहाः पांच वर्ष!
बुद्ध ने कहाः किस हिसाब से गिनती करते हो।
उस बूढ़े आदमी ने कहाः इधर पांच वर्षों से मैं जीवित हुआ हूं, इसके पहले पचहत्तर वर्ष मैंने उधारी में बिताए, उनको मैं जिंदगी में नहीं गिनता हूं।
बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहाः याद रख लो इस घटना को। और आज से मेरे भिक्षुओं की उम्र उसी दिन से गिनी जाए जिस दिन से उनके जीवन में विचार का जन्म हो, उसके पहले कि उम्र गिनने की कोई भी आवश्यकता नहीं है।
तो मैं आपसे निवेदन करता हूं, वह चित्त जो उधार और दूसरों के विचारों
से भरा है, मुर्दा है। और उस मुर्दा चित्त को लेकर, उस डेड माइंड को लेकर हम जीवन में चलेंगे, तो निश्चित ही जीवन में सब उलझन हो जाएगी, सब समस्या हो जाएगी, समाधान कोई भी नहीं हो सकता। हमारी जिंदगी पूरी की पूरी समस्याओं से भरी है। और समाधान एक भी नहीं। क्या बात है? बात इतनी सी है, हमारे पास वह जीवित चित्त नहीं जो समस्याओं को हल कर ले और समाधान दे दे। मुर्दा चित्त है, उससे कुछ समस्या समाधान होती नहीं, उससे तो और समस्याएं पैदा होती चली जाती हैं। मुर्दा चित्त सिखा हुआ चित्त होता है।
जापान के एक गांव में दो मंदिर थे। एक उत्तर का मंदिर कहलाता था और दूसरा दक्षिण का। एक-दूसरे के विरोध में थे। जैसे कि सभी मंदिर एक-दूसरे के विरोध में होते हैं। इतना ज्यादा विरोध था कि मंदिर के पुजारी आपस में अनेक वर्षों से कभी मिले नहीं थे। वह विरोध अनेक वर्षों का नहीं था, सैकड़ों वर्षों का था। पीढ़ी दर पीढ़ी दुश्मनी चली थी। सभी धार्मिक लोगों की दुश्मनी पीढ़ी दर पीढ़ी चलती है।
आपके पड़ोस में कोई मुसलमान रहता है, मुसलमान के पड़ोस में कोई हिंदू रहता है, हिंदू के पड़ोस में कोई ईसाई रहता है, इनकी क्या दुश्मनी है? लेकिन पीढ़ी दर पीढ़ी मूर्खताएं चलती हैं। ईसाई होने से वह हिंदू का दुश्मन हो जाता है, मुसलमान होने से ईसाई का दुश्मन हो जाता है। दुश्मन हमारी सीधी नहीं होती, पीढ़ी दर पीढ़ियों से चलती है। उन दोनों मंदिरों के पुजारियों में भी सैकड़ों वर्षों से दुश्मनी चल रही थी। पुजारी बदल गए, मंदिर बदल गए, लेकिन दुश्मनी कायम थी। दुश्मनी यहां तक थी कि दोनों मंदिरों के पुजारियों के पास, दो छोटे-छोटे लड़के थे छोटे-मोटे काम करने के लिए। अब लड़के तो लड़के हैं, बूढ़े उनको बिगाड़ने की कोशिश तो करते हैं लेकिन फिर भी वक्त लगता है। एकदम से बूढ़े बच्चों को बिगाड़ नहीं पाते। वे दोनों बूढ़े पुजारी भी उन बच्चों को कहते थे कि दूसरे मंदिर में कभी मत जाना। लेकिन बच्चे तो बच्चे हैं, कभी झांक कर देख लेते हैं। बल्कि जहां निषेध किया जाता है, बच्चों का जानने का आकर्षण सहज ही बढ़ जाता है। शायद उनसे किसी ने

न कहा होता कि दूसरे मंदिर में मत झांकना, तो शायद वे न भी झांकते। लेकिन बच्चे तो बच्चे हैं। उनको जब कहा गया कि दूसरे मंदिर में मत झांकना, तो वे चोरी से कभी-कभी झांक कर देख भी आते थे कि बात क्या है दूसरे मंदिर में? उनके पुजारियों ने कहा था कि दूसरे मंदिर के लड़के से बातचीत भी मत करना। हमारे मंदिर बोलचाल पर नहीं हैं बहुत दिनों से। दुनिया के कोई मंदिर दूसरे मंदिरों से बोलचाल पर नहीं है। बोलचाल बंद है। ये जितने परमात्मा की बातें करने वाले लोग हैं, और परमात्मा के नाप पर मंदिर बनाए हुए हैं, इनके मंदिर एक-दूसरे से बोलचाल नहीं करते हैं, बोलचाल बंद है। हां, शास्त्रार्थ करते हैं, अगर उसको कोई बोलचाल कहता हो। लड़ाई-झगड़ा कहते हैं, अगर उसको कोई बोलचाल कहता हो। लेकिन बोलचाल पर नहीं। वे दोनों मंदिर भी नहीं थे।
एक दिन सुबह-सुबह दोनों मंदिरों के दोनों लड़के बाजार सब्जी लेने जाते थे। रास्ते पर दोनों का मिलना हो गया। उत्तर के मंदिर के लड़के ने दक्षिण के मंदिर के लड़के से कहाः कहां जा रहे हो? व्हेयर आर यू गोइंग?
पुजारी और पुरोहितों के पास रहते-रहते बच्चे भी ऊंची-ऊंची बातें करना सीख गए थे। बीमारियां संक्रामक होती हैं। ऊंची बातें भी संक्रामक होती हैं।
उस दक्षिण के मंदिर के लड़के ने कहाः पूछा उत्तर के मंदिर के लड़के ने, कहां जा रहे हो? दक्षिण के मंदिर के लड़के ने कहाः जहां पैर ले जाएं।
बड़ा दार्शनिक उत्तर दिया, बड़ा फिलासफिकल। उत्तर का मंदिर का लड़का रह गया कि अब और बात आगे क्या चलाएं। वापस लौट गया। उसने अपने पुजारी को जाकर कहा कि आज मैंने पूछा था उस मंदिर के लड़के से कहां जा रहे हो? उसने बड़ी ऊंची बात कह दी, उसने कह दिया, जहां पैर ले जाएं। फिर मुझे कुछ भी नहीं सूझा, मैं वापस लौट आया।
उस पुजारी ने कहाः तूने बहुत बड़ी गलती की। हम कभी उस मंदिर से हारे नहीं हैं। और यह तो हार हो गई। कल तू फिर पूछना कहां जा रहे हो? और जब वह कहे जहां पैर ले जाएं, तो तू कहना कि अगर पैर तेरे होते ही न तो फिर भी कहीं जाता की नहीं? यह तू कह देना।
लड़का तैयार उत्तर लेकर गया। दूसरे दिन फिर उसी जगह खड़ा हो गया। वह दक्षिण का मंदिर का लड़का निकला, उसने पूछा, कहां जा रहे हो? उत्तर तैयार था। वह अगर कहता कि जहां पैर ले जाएं, तो वह पूछता कि अगर पैर होते ही नहीं तो कहां जाते? फिर जाते या नहीं जाते? फिर जिंदगी में जाना होता कि नहीं होता? लेकिन वह लड़का बहुत गड़बड़ था। वह दक्षिण के मंदिर के लड़के ने कहाः जहां हवाएं ले जाएं। उसने कहाः जहां हवाएं ले जाएं।
अब बड़ी मुश्किल हो गई। बंधा हुआ उत्तर अटका रह गया, अब क्या कहें? वह लड़का वापस लौटा, उसने अपने गुरु को आकर कहाः आज फिर हार गया हूं, वह लड़का तो बहुत बेईमान है। उसने तो उत्तर ही बदल लिया। उसके गुरु ने कहाः यह तो बहुत बुरी बात है। उस मंदिर से हम कभी हारे नहीं। कल तू फिर पूछना। पूछना कि कहां जा रहे हो? और जब वह कहे जहां हवाएं ले जाएं, तो उससे कहना कि अगर हवाएं बंद हों तो फिर कहीं जाओगे कि नहीं? जाओ।
दूसरे दिन वह लड़का फिर गया। तैयार उत्तर साथ में लेकर। उसी जगह खड़ा हो गया। प्रतीक्षा करने लगा। वह मंदिर का लड़का निकला, दूसरे मंदिर का। उसने पूछा कहां जा रहे हो? उस लड़के ने कहाः साग-सब्जी खरीदने। फिर बात वहीं अटक गई। वह उत्तर बेकार हो गया।
सीखे हुए उत्तर हमेशा बेकार हो जाते हैं। जिंदगी रोज बदल जाती है। सीखे हुए उत्तर मुर्दा होते हैं। जिंदगी जीवित है, रोज बदल जाती है। वह लड़का बेईमान नहीं था, जीवित लड़का था। वह उत्तर बदल नहीं रहा था, जिंदगी रोज बदल जाती है, इसमें कोई करेगा क्या। जिंदगी है गतिवान, डाइनैमिक, सब बदल जाता है। और हमारे उत्तर बदलते नहीं। और जब हम जिंदगी के सामने अपने बंध-बंधाए उत्तर लेकर खड़े होते हैं, जिंदगी बदल जाती है, उत्तर ओछे पड़ जाते हैं, उत्तर बेकार हो जाते हैं, जिंदगी उलझ जाती है, समस्याएं खड़ी हो जाती हैं।

मनुष्य का जीवन उलझा हुआ है, इसलिए नहीं कि उसके पास समाधान नहीं है, बल्कि इसलिए कि उसके सब समाधान पुराने, उधार, बासे और झूठे हैं, दूसरों से लिए हुए हैं। उसका कोई समाधान उसके चित्त से पैदा नहीं होता। अगर हम जिंदगी का सीधा साक्षात कर सकें, फेस टु फेस एनकाउंटर हो सके, जिंदगी को सामने से देख सकें, और बीच में उधार और बासे उत्तरों को न लें, तो हमारे चित्त में इतनी क्षमता है कि वह जीवित, सचेतन चित्त जो समाधान देगा, वह जीवन की सारी समस्याओं को परिवर्तित कर देता है, बदल देता है। ऐसा चित्त चाहिए जो उधार विचारों से दबा हुआ न हो, जो किसी के सीखे हुए उत्तर लेकर जिंदगी को हल करने न चला गया हो। ऐसा चित्त चाहिए यंग और फ्रेश, जवान और ताजा कि जिंदगी को सीधा ले सके, जिंदगी के सामने खुद को खड़ा कर सके, जिंदगी के सामने चित्त को दर्पण की भांति ला सके बिना किसी धुल के, तो उस दर्पण में जो जिंदगी की छवि बनती है उससे समस्याएं नहीं उठतीं जीवन को समाधान उपलब्ध होते हैं।
लेकिन हमारा चित्त है धुल से भरे हुए दर्पण की भांति। और उस धुल को हम ज्ञान समझते हैं। और उस धुल को हम समझते हैं कि यह ज्ञान है, परम ज्ञान है शास्त्रों का, सिद्धांतों का, गुरुओं का। मैं आपसे निवेदन करूं, ज्ञान तो केवल वही होता है जो स्वयं उपलब्ध होता है, बाकी कोई भी ज्ञान ज्ञान नहीं होता। इससे यह मतलब न लें।

पूछा है किसी ने कि क्या हम इससे यह समझ लें कि सब शास्त्र झूठे हैं?

यह किसने कहा आपसे? सब शास्त्र झूठे नहीं हैं। लेकिन जो भी उधार लिया जाता है वह झूठा होता है। जिसने कहा होगा, जिसने गीता कही होगी, उसके लिए गीता सत्य होगी, लेकिन आपके लिए सत्य नहीं है। जिसने कुरान कहा होगा, उसके लिए कुरान सत्य होगा, लेकिन आपके लिए सत्य नहीं है। सत्य उसका होता है जो उसे जानता और जीता है, उसका नहीं जो शब्दों से उसे पकड़ लेता है। शब्द झुठला देते हैं, शब्द मुर्दा हो जाते हैं, शब्द जीवित नहीं होते।
गीता पर हजार टीकाएं हैं, कृष्ण का दिमाग खराब था क्या कि उन्होंने एक
ही बात कही, हजार मतलब रहे होंगे उसमें? कृष्ण का तो एक ही अर्थ रहा होगा अगर दिमाग ठीक रहा हो तो। अगर दिमाग खराब रहा हो तो उसके कितने ही अर्थ रहे होंगे। कृष्ण का तो दिमाग ठीक था, अर्थ भी एक रहा होगा, लेकिन ये हजार अर्थ कैसे निकल आए? और जिन्होंने ये हजार अर्थ निकाल लिए ये कृष्ण के अर्थ रहे या इनके अपने अर्थ हो गए? और अभी हजार अर्थ और निकल आएंगे। क्योंकि एक बीमारी फैली हुई है, कि जो गीता पर टीका न लिखे वह गुरु नहीं है, ज्ञानी नहीं है। इसलिए जिनको भी गुरु और ज्ञानी होने का पागलपन सवार होता है वे गीता पर टीका जरूर लिखते हैं। तो बढ़ती जाती हैं टीकाएं। ये किसके अर्थ हैं? ये कृष्ण के अर्थ हैं या उनके जो गीता पर टीकाएं लिख रहे हैं? ये गीता पर टीका लिखने वालों के अर्थ हैं, ये कृष्ण के अर्थ नहीं हैं। और कृष्ण का अर्थ आप कैसे जान सकते हैं बिना कृष्ण हुए? चेतना जब तक कृष्ण की स्थिति में न पहुंचे तब तक कृष्ण का अर्थ जाना नहीं जा सकता। क्योंकि अर्थ जानने वाले मन का तन ही तो अर्थ बताने वाला होगा।
मैं यहां बोल रहा हूं, तो आप सोचते होंगे कि आप सभी एक ही बात सुन रहे हैं तो आप गलती में हैं। यहां जितने लोग हैं उतनी बातें सुनी जा रही हैं, बोल तो मैं एक रहा हूं। बोलने वाला एक है। लेकिन यहां उतनी बातें सुनी जा रही हैं जितने लोग सुनने वाले हैं।
तो किताब जब आप पढ़ते हैं या किसी को जब आप सुनते हैं, तो इस ख्याल में न रहें कि आपने उसको समझ लिया, आप अपना ही अर्थ निकालते हैं और खोजते हैं, वह अर्थ आपका होता है, इसलिए वह अर्थ एकदम झूठा होता है।
गीता झूठी नहीं है, लेकिन गीता पढ़ कर आप जो भी समझेंगे वह झूठा होगा। क्योंकि आप कृष्ण नहीं हैं। तो मैं यह कहता हूं कि गीता पढ़ने से आप ज्ञान को उपलब्ध नहीं होंगे। बल्कि कृष्ण जैसी चेतना आपके भीतर उत्पन्न हो जाए, तो आप ज्ञान को उपलब्ध होंगे। और उस दिन अगर गीता को भी पढ़ेंगे, तो वह भी ज्ञान बन जाएगी।

इसलिए यह नहीं कह रहा हूं कि जो कहा गया है वह असत्य है, लेकिन जो भी आप समझेंगे वह असत्य होगा। समझने वाले चित्त पर सब कुछ निर्भर है। और यह समझने वाला चित्त अगर उधार विचारों से भरा है तो यह कुछ भी नहीं समझ सकता। समझने के लिए चाहिए ताजगी, फ्रेशनेस चाहिए। चित्त निर्मल, साफ, मौन, विचारों से मुक्त चाहिए। जहां विचारों के बादल घिरे होते हैं वहां चेतना का सूरज ढंक जाता है। और जहां विचारों के बादल विदा कर दिए जाते हैं, वहां चेतना का सूरज खुले आकाश में प्रकट होता है। अगर अपने चित्त को खुले हुए सूरज की भांति बनाना है, तो विचारों के जाल से उसे छुड़ाना जरूरी है। तभी वह चित्त प्रकाशित होकर जानने में समर्थ हो पाएगा।
इसलिए मैंने कहा कि चित्त स्वतंत्र होना चाहिए। लेकिन आपको घबड़ाहट लगती होगी, इसलिए सारे प्रश्न करीब-करीब इसी संबंध में, आपको घबड़ाहट लगती होगी कि अगर चित्त स्वतंत्र हो गया, तो कई तरह की घबड़ाहटें लगती होंगी। दो- तीन भय लगते होंगे। पहला तो भय यह है कि अगर हमने यह समझ लिया कि दूसरों से जो ज्ञान मिला है वह झूठा है। तो हम अज्ञानी सिद्ध हो जाएंगे, क्योंकि अपना तो कोई ज्ञान नहीं है। अज्ञानी होने को कोई राजी नहीं है। यह भय लगता है, यह फियर लगता है। कि अगर सारा ही ज्ञान हमारा उधार है, और उसी के बल पर हम ज्ञानी बने हुए हैं, तो अगर हमने यह जान लिया कि यह उधार ज्ञान व्यर्थ है, तो फिर तो हम तो कोरे हाथ रह जाएंगे, खाली हाथ रह जाएंगे, हमारे पास तो कुछ बचेगा नहीं, फिर तो हम अज्ञानी हो जाएंगे।
अज्ञानी होने से डरे हुए हैं आप। आपको न शास्त्रों से मतलब है, न गीता से, न कृष्ण से, न राम से, आपको किसी से मतलब नहीं है। उन्हीं से मतलब होता तो आपकी जिंदगी दूसरी हो गई होती। उनसे कोई मतलब नहीं है, मतलब अपने से है। अपने पांडित्य का कहीं महल गिर न जाए, इसलिए घबड़ाहट होती है। इसलिए पच्चीस बहाने लिखे हैं, लिखा है कि अगर सभी लोग स्वतंत्र हो गए, और सभी पुराना ज्ञान गलत हो गया तो दुनिया में अज्ञान हो जाएगा। दुनिया में अज्ञान नहीं होगा, आप अज्ञानी हो जाएंगे। खुद घबड़ाए हुए हैं कि कहीं मैं अज्ञानी न हो जाऊं। और आप अज्ञानी हैं। उस समय तक आदमी अज्ञानी हैं जब तक वह दूसरों के विचारों को पकड़ने को उत्सुक बना रहता है।
जिसके पास ज्ञान का जन्म होता है उसे दूसरों के विचार पकड़ने की कोई जरूरत नहीं रह जाती, उसके पास अपना प्रकाश होता है।
एक रात एक अंधा आदमी अपने मित्र के घर में मेहमान हुआ। जब रात को वह विदा होने लगा, तो उसके मित्र ने कहा कि साथ में एक लालटेन लेते जाएं, रास्ता अंधेरा है। वह आदमी तो अंधा था। उस अंधे आदमी ने कहा कि बड़े पागलपन की बातें कर रहे हो, हाथ में मेरे लालटेन हो या न हो, दोनों हालत में मेरे लिए अंधेरा ही रहेगा, मैं तो अंधा हूं, तो लालटेन ले जाकर क्या करूंगा? उसकी बात तो सही थी। अंधे आदमी को लालटेन भी पकड़ा दो तो फायदा क्या है? उसे तो अंधेरा ही है, चाहे लालटेन हो, चाहे न हो। चाहे सूरज हो, चाहे न हो। उसने ठीक ही कहा, लेकिन वे घर के लोग बड़े समझदार थे, उन्होंने उसको समझाया, उन्होंने कहा, यह तो ठीक है कि तुम्हारे हाथ में लालटेन होने से तुम्हें कोई फर्क नहीं पड़ेगा, लेकिन कम से कम दूसरे लोगों को दिखाई पड़ता रहेगा कि तुम आ रहे हो, तो वे तुमसे न टकराएंगे। कम से कम इतना फायदा तो हो ही जाएगा। अंधे आदमी को मान लेना पड़ा कि यह बात तो ठीक है, दूसरों लोग न टकराएं यह भी बहुत। वह लालटेन लेकर गया, लेकिन बीस ही कदम गया होगा, पच्चीस कदम कि कोई टकरा गया।
वह बहुत हैरान हुआ। उसने कहा कि क्या मेरे मित्र की दलील गलत हो गई? उसने टकराने वाले से पूछा कि महानुभाव, क्या बात है? क्या आपके भी पास आंखें नहीं हैं? यह हाथ की लालटेन दिखाई नहीं पड़ती? उस दूसरे आदमी ने कहाः महानुभाव, आपकी लालटेन बुझ गई है। अब अंधे आदमी को कैसे पता चले कि लालटेन बुझ गई है? लेकिन उस अंधे आदमी को भी एक बात पता चल गई कि कोई टकराया है। हम उस अंधे आदमी से ज्यादा अंधे हैं। अपनी गीता की लालटेन लिए है, कोई कुरान की लालटेन लिए हुए है, कोई और बाइबिल की लालटेन लिए हुए चले जा रहे हैं। और रोज टकरा रहे हैं। लेकिन कोई यह नहीं पूछता कि कहीं लालटेन बुझी हुई तो नहीं है? और एक बात तय है, अगर लालटेन बुझी हुई न हो, तो टकराना नहीं हो

सकता। लेकिन टकराना हो रहा है। हिंदू मुसलमान से टकरा रहा है, मुसलमान ईसाई से टकरा रहा है। मतलब क्या है? मतलब यह है कि हाथ में बुझी हुई लालटेन है। बुझी हुई लालटेन और अंधों के हाथ में हैं और टकराहट रोज हो रही है। लेकिन अगर कोई यह कहे, अंधे आदमी को जाकर समझाए कि फिजूल इस लालटेन का वजन तू ढो रहा है।
सवाल दूसरों की लालटेन ढोने का नहीं है, सवाल अपने पास आंखें होने का है। अगर अपने आप आंखें नहीं हैं तो लालटेन दूसरे की कितनी देर जली हुई रहेगी? उसका कितना भरोसा है? उसके जले रहने की कितनी, कितनी निश्चिंतता हो सकती है? कितनी सिक्योरिटी हो सकती है?
सच तो यह है कि बाहर के जगत में जो हम लालटेन जला कर दूसरे को दे देते हैं, वह तो थोड़ी-बहुत देर जल भी जाएगी, क्योंकि वह लालटेन बाहर है, लेकिन आत्मा के जीवन में जो लालटेन जलती है वह तो दूसरे के हाथ में देते ही बुझ जाती है, एक क्षण भी दूसरे के हाथ में जली हुई नहीं रहती। क्योंकि उसको जलाने के लिए खुद के प्राणों का तेल देना पड़ता है। वह दूसरा आदमी देने को तैयार न हो तो कैसे जली रहेगी? इसलिए आत्मिक जीवन का प्रकाश देते ही दूसरे आदमी के हाथों में अंधकार हो जाता है। कोई रास्ता नहीं है टरंसफर करने का आत्मिक प्रकाश को, उसको हस्तांतरित करने का कोई रास्ता नहीं है। अब तक नहीं है, आगे भी नहीं होगा।
और भगवान न करे कि कभी यह रास्ता हो जाए। क्योंकि जिस दिन आत्मिक ज्ञान भी ट्रांसफर किया जा सकेगा उस दिन उसकी भी दुकानें बन जाएंगी और बिक्री शुरू हो जाएगी। और जो ज्ञान बिकता हुआ मिल जाए बाजार में वह दो कौड़ी का हो जाता है, उसका कोई मूल्य नहीं है। आत्मिक ज्ञान कभी भी दिया- लिया नहीं जा सकता।

एक प्रश्न पूछा है कि जब आत्मिक ज्ञान दिया-लिया नहीं जा सकता, तो आप मेहनत क्यों कर रहे हैं? आप क्यों समझा रहे हैं कुछ बातें? जब समझाई नहीं जा सकतीं।

बहुत ठीक बात पूछी है कि जब आत्मिक ज्ञान दिया-लिया नहीं जा सकता, तो मैं क्यों श्रम कर रहा हूं? क्यों आपको इतनी बातें कह रहा हूं? बिल्कुल ही ठीक है। आत्मिक ज्ञान नहीं दिया-लिया जा सकता। लेकिन यह बात तो कही जा सकती है कि आत्मिक ज्ञान लिया-दिया नहीं जा सकता। यह बात जरूर कही जा सकती है।
आत्मिक ज्ञान आपको दे भी नहीं रहा हूं। और जो मैं दे रहा हूं अगर उसको कोई आत्मिक ज्ञान समझ ले, तो वह गलती में है। वही गलती तो हजारों साल से जल रही है।
मैं आपको आत्मिक ज्ञान नहीं दे रहा हूं। मैं तो केवल उन थोड़ी सी बातों
की चर्चा कर रहा हूं जिनके कारण आपके भीतर जो आत्म-ज्ञान है वह प्रकट नहीं हो पा रहा है। मैं तो केवल हिंडरेंसिस की बातें कर रहा हूं, उन बीच की रुकावटों की, बाधाओं की बातें कर रहा हूं, जिनके कारण आत्म-ज्ञान नहीं मिल रहा है। उन बाधाओं की बात की जा सकती है। उन बाधाओं की बात की जा सकती है जिनके कारण आपके भीतर छिपा हुआ दीया प्रकट नहीं हो पा रहा है। आपको दीया नहीं दिया जा सकता, आपको आलोक नहीं दिया जा सकता, लेकिन आलोक पर कौन से पर्दे हैं उनकी बात की जा सकती हैं। और अगर वे पर्दे ठीक से आपके विवेक में आ जाएं, आपके विश्वास में नहीं। मैं जो कह रहा हूं उस पर आप विश्वास कर लें तो कोई फर्क न पड़ेगा। क्योंकि विश्वास खुद ही एक पर्दा है, जो भीतर के दीये को छिपाए हुए है। संदेह तोड़ सकता है उस पर्दे को, लेकिन विश्वास तो उसको मजबूत कर देता है।
तो मैं जो कर रहा हूं वह आपको कोई आत्म-ज्ञान नहीं दे रहा हूं। कह रहा हूं कुछ बातें जिनके कारण आत्म-ज्ञान के होने में बाधा है। और सबसे बड़ी बाधा है विश्वास के कारण। जो लोग भी बिलीफ कर लेते हैं वे लोग कभी सत्य को उपलब्ध नहीं होते।

लेकिन कहा है, पूछा है, प्रश्न पूछे हैं कई, कि विश्वास करने से तो बड़ी शांति मिलती है। शराब पीने से भी बड़ी शांति मिलती है। सो जाने से भी बड़ी शांति मिलती है। संगीत सुनने से भी बड़ी शांति मिलती है। माफिया का इंजेक्शन लगा कर सो जाओ, लेटे रहो तो भी बड़ी शांति मिलती है। लेकिन इस शांति को क्या करेंगे? इस शांति का कोई मतलब नहीं है। विश्वास अफीम है। उससे शांति इसलिए नहीं मिलती कि आपको शांति मिल गई, बल्कि उस नशे में अशांति भूल जाती है। नशे में अशांति भूल जाती है। विश्वास से कोई शांति मिलती नहीं केवल शांति का धोखा पैदा हो जाता है।

पूछा हैः विश्वास तो फलदायी है।

जरूर, एक भिखारी आदमी को अगर विश्वास दिला दिया जाए कि तू बादशाह है,
और वह अपने को बादशाह समझने लगे तो बड़ा फलदायी है। क्योंकि भिखारीपन की तकलीफ मिट गई, बिना कुछ किए बादशाह हो गया। और अगर वह भिखारी चिल्लाने लगे गांव में कि मैं बादशाह हो गया हूं, तो उसको तो पूरी शांति मिलेगी, उसको तो पूरा मजा बादशाह होने का आ जाएगा, लेकिन हम उस पर हंसेंगे और समझेंगे पागल हो गया है।
विश्वास किसी भ्रम को पैदा करवा दे सकता है; लेकिन भ्रम से शांति नहीं मिलती, केवल अशांति ढंक जाती है। विश्वास से कोई वस्तुतः शांति उपलब्ध नहीं होती; क्योंकि विश्वास है अंधा, उसमें विवेक की आंख नहीं, विचार की ज्योति नहीं, मान लेने का अंधापन है, दूसरे कह रहे हैं इसलिए हम मान लेते हैं। और दूसरे क्या कह रहे हैं यह भी हमें पता लगाने की सुविधा नहीं होती; क्योंकि वे दूसरे यह समझाते हैं कि अगर तुमने संदेह किया तो भटक जाओगे, विश्वास करो।
हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा हैः ऐसा कोई भी असत्य नहीं है जिसे बार-बार दोहरा कर और लोगों को विश्वास न दिलाया जा सके कि वह सत्य है। उसने लिखा है कि बार-बार प्रचार करो, कोई भी असत्य सत्य प्रतीत होने लगेगा, क्योंकि लोग विश्वासी हैं।
यूनान में अरस्तू हुआ। अरस्तू बहुत विचारशील आदमी समझा जाता है। कहते हैं यूरोप में दर्शनशास्त्र का पिता वही था। उसने ही तर्क को जन्म दिया। लेकिन उतना तार्किक व्यक्ति, उतना लॉजिशियन, उतना बड़ा तर्क का पिता, उसने भी अपनी किताब में एक बात लिखी है कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। यूनान में यह ख्याल था कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। और पुरुषों को हमेशा से ही यह ख्याल है कि स्त्रियों में जो कुछ भी हो थोड़ा-बहुत कम होना ही चाहिए। पुरुष का मुकाबला तो हो नहीं सकता, इसलिए दांत भी बराबर कैसे हो सकते हैं। लेकिन किसी नासमझ ने यह कोशिश न की कि स्त्रियों के दांत गिन लेता। स्त्रियां वैसे कम नहीं हैं, पुरुषों से थोड़ी ज्यादा हैं। और अरस्तू की खुद की दो औरतें थीं, एक भी नहीं थी। दो औरतें थीं कभी भी गिनती कर सकता, लेकिन गिनती करने की जरूरत नहीं समझी, विश्वास काफी था कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं। किताब में लिख दिया। हजार साल मरने के बाद तक यूरोप में लोग यही मानते थे स्त्रियों के दांत कम होते हैं। हजार साल तक किसी ने फिकर नहीं की, गिनती करके देख ले। क्योंकि गिनती तो वह करे जो संदेह करे। और संदेह तो कोई करना नहीं चाहता, विश्वास ठीक है। जिस आदमी ने पहली दफा स्त्री के दांत गिने उसे लोगों ने पत्थर मारे और कहा, यह पागल है, संदेह करता है। अरे हजारों साल से लोग मानते हैं और जानते हैं कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं, कौन कहता है कि बराबर होते हैं? और अगर एकाध स्त्री के बराबर भी हों तो गलती से उग गए होंगे। ऐसा कभी हो नहीं सकता कि दांत स्त्री के बराबर हो जाएं। बड़े-बड़े शास्त्रों में लिखा हुआ है। यह मनुष्य का अंधापन है। इस अंधेपन के कारण विज्ञान का जन्म बहुत मुश्किल से हो पाया। और इस अंधेपन के कारण अभी तक वैज्ञानिक धर्म का जन्म तो हो ही नहीं पाया है। अभी हम पदार्थ के संबंध में तो वैज्ञानिक हो गए, साइंटीफिक हो गए, लेकिन परमात्मा के संबंध में अभी भी साइंटीफिक नहीं हुए हैं। और यह दुनिया में जो धर्म का घास दिखाई पड़

रहा है वह इसीलिए है कि पदार्थ के संबंध में तो विज्ञान आ गया है और धर्म के संबंध में अभी भी विश्वास है। विश्वास हार जाएगा विज्ञान के सामने, टिकेगा नहीं। टिकना चाहिए भी नहीं।
लेकिन धार्मिक लोग घबड़ाए हुए हैं, वे कहते हैं कि अगर विश्वास छूटा तो
सब गया। मैं बता देता हूं कि विश्वास तो जाएगा, उसके साथ सारे धर्म जाएंगे, यह सौ, दो सौ वर्ष की बात हो सकती है, इससे ज्यादा की नहीं। अगर धर्म को बचाना है दुनिया में तो विश्वास से उसका संबंध तोड़ दो। उसका संबंध विवेक से जोड़ो। धर्म को भी विवेक से संयुक्त होकर ही बचाया जा सकता है। अविश्वास वाला धर्म बचेगा नहीं।
यह जो युवकों के मन में धर्म के प्रति अविश्वास पैदा हो रहा है इसके कसूरवार आप हो, युवक नहीं; धर्म-पुरोहित हैं, पंडित हैं, धर्मशास्त्री हैं, वे अब भी वही पुरानी बात दोहराए चले जा रहे हैं कि विश्वास करो, और विश्वास बड़ा फलदायी है।
सच तो यह है कि विश्वास जनता के लिए फलदायी नहीं है, पंडित-पुरोहितों
के लिए फलदायी है। उनको बहुत फलदायी है। क्योंकि जिस दिन विश्वास गया उस दिन पंडित और पुरोहित भी चले जाएंगे। उनके साथ ही उनको भी जाना पड़ेगा। विश्वास उनका व्यवसाय है, प्रोफेशन। जब तक विश्वास है तब तक आदमी का शोषण किया जा सकता है। तब तक उसे मूर्ख बनाया जा सकता है। और ऐसी-ऐसी चीजों के बाबत उसे समझाया जा सकता है और राजी किया जा सकता है जो निपट नासमझी की हैं और जिनका कोई संबंध सत्य से नहीं है। विश्वास फलदायी है।

किसी ने पूछा है कि क्या पंडित और पुरोहित सब अज्ञानी हैं, नासमझ हैं,
जो आप उनका विरोध करते हैं?

मुझे किसी के विरोध से क्या लेना-देना है। लेकिन जो सत्य है उसे कहना जरूरी है। पंडित-पुरोहित नासमझ नहीं हैं, बड़े समझदार हैं। अगर वे नासमझ होते, तो दुनिया में धर्म कभी का बच जाता। वे बहुत समझदार हैं, बहुत कनिंग, बहुत चालाक। उनकी समझदारी बहुत गहरी है। लेकिन समझदारी उनकी परमात्मा के प्रति नहीं हैं। क्योंकि अगर उनकी समझदारी परमात्मा के प्रति होती, तो दुनिया में एक पुरोहित दूसरे पुरोहित से लड़ाई का कारण नहीं बनता। क्योंकि जो चीज परमात्मा से जोड़ने वाली हो, वह कम से कम मनुष्य को मनुष्य से तो जोड़ ही देती है। लेकिन मनुष्य को मनुष्य से तोड़ने वाले धर्म परमात्मा से जोड़ने वाले सेतु नहीं हो सकते। मगर उनकी समझदारी कुछ और है।
एक छोटी सी कहानी कहूं, उससे ख्याल आ सके कि उनकी समझदारी क्या है।
एक राज दरबार में एक व्यक्ति आया, वह एक बहुत शानदार पगड़ी पहने हुए था। उस पगड़ी में बड़े चमकदार सलमा-सितारे लगे हुए थे, कपड़ा भी उस पगड़ी का बहुत शानदार था। ऐसी पगड़ी उस देश में पाई नहीं जाती थी। बड़ी शानदार पगड़ी थी। वह दरबार के भीतर आया। स्वभावतः बादशाह ने पूछा कि हे परदेशी मित्र, यह पगड़ी कहां से खरीदी? वैसी पगड़ी मैंने आज तक देखी नहीं। कितना मूल्य है इसका?
उस आदमी ने कहाः इसका मूल्य मत पूछें। बहुत ज्यादा मूल्य की है, शायद
आप विश्वास न कर सकेंगे।
राजा ने कहाः फिर भी।
उसने कहाः एक हजार स्वर्ण-मुद्राओं में इस पगड़ी को खरीदा है।
राजा भी चौंक गया! ज्यादा से ज्यादा बीस-पच्चीस रुपये की पगड़ी होगी।
उसके वजीर ने राजा के कान में कहा कि यह आदमी बहुत चालाक मालूम पड़ता है। यह पगड़ी बीस-पच्चीस रुपये से ज्यादा की नहीं, ज्यादा से ज्यादा इतने की है। हजार स्वर्ण-मुद्राएं! धोखे में मत आ जाना, उसने राजा से कहा। उसके कान में कहा, किसी ने यह सुन नहीं पाया। लेकिन वह पगड़ी वाला बोला, मैं जाता हूं, मैं किसी विशेष मतलब से आया था। मैं आपके दरबार से वापस जाता हूं। उस राजा ने पूछा किस मतलब से आए?
उस पगड़ी वाले आदमी ने कहा कि जब मैंने यह पगड़ी खरीदी थी, तो मुझे बताया गया था, इस जमीन पर एक बादशाह ऐसा भी है, जो इसे दो हजार स्वर्ण-मुद्राओं

में खरीद सकता है। मैं समझ गया कि वह बादशाह तुम नहीं हो। यह दरबार वह दरबार नहीं है। मैं जाता हूं कहीं और खोजने।
उस राजा ने कहा कि दो इसे दो हजार स्वर्ण-मुद्राएं और पगड़ी खरीद लो!
इज्जत का सवाल बन गया! अहंकार का सवाल बन गया! वजीर दंग रह गया देख कर
कि यह आदमी तो बड़ा चालाक है!
जब सभा विसर्जित हो गई, दरबार हटा, तो उसे पगड़ी वाले आदमी ने वजीर के कान में कहाः यू मे नो दि प्राइज ऑफ दि टर्बन, बट आई नो दि विकनेसिस ऑफ दि किंग। आई नो दि विकनेसिस ऑफ दि किंग। तुम जानते होओगे पगड़ी की कीमत, लेकिन मैं राजाओं की कमजोरी जानता हूं।
तो मैं आपसे कहता हूं, ये पादरी और पुरोहित और पंडित आदमियों की कमजोरियां जानते हैं। ह्यूमन विकनेसिस जानते हैं। आदमी कहां-कहां कमजोर है इन्हें पता चल गया है। उस कमजोरी का शोषण करते हैं। आदमी बहुत जगह कमजोर है। आदमी की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि उसे पता नहीं कि जीवन क्यों है? क्या है? कहां से आता है? कहां जाता है? पादरी और पुरोहित अच्छी तरह जान गए हैं। वे बता देते हैं कि जीवन कहां से आता है, कहां जाता है; भगवान बनाने वाला है, यह हो रहा है, वह हो रहा है, वे सारी बातें बता देते हैं। आदमी के अज्ञान की कमजोरी वे समझ गए हैं। और जो बातें वे बताते हैं उसके वेरिफिकेशन का कोई रास्ता नहीं है। उनको जानने का, उनकी प्रामाणिकता का कोई रास्ता नहीं है। वे जो कह देते हैं वह मानना पड़ेगा। क्योंकि उसके विपरीत भी कुछ कहने का कोई कारण नहीं है। इसलिए तो दुनिया में पच्चीस तरह की बातें चलती हैं और शोषण चलता है।
आदमी का अज्ञान उसकी कमजोरी है। उसको झूठा ज्ञान दे दो। उसको थोड़ी तृप्ति मिल जाए, उसका शोषण किया जा सकता है। आदमी का भय दूसरी कमजोरी है। फियर है आदमी के भीतर बहुत। होना स्वाभाविक है। चौबीस घंटे जिंदगी मौत से घिरी है। चौबीस घंटे किसी भी क्षण मैं मर सकता हूं। आप मर सकते हैं। मरने से डर है, पुरोहित और पंडित जानते हैं कि आदमी मरने से डरता है। इसलिए वे कहते हैंः आत्मा अमर है, घबड़ाओ मत। आदमी के मरने का डर का शोषण किया जा सकता है। उसको विश्वास दिलाया जाए कि आत्मा अमर है, मरोगे नहीं, घबड़ाओ मत। यह विश्वास उसके भय को संतोष देता है, राहत देता है। तो जितने लोग मौत से डरने वाले हैं, वे सब मान लेते हैं कि आत्मा अमर है। जानते नहीं कि आत्मा अमर है, मान लेते हैं कि आत्मा अमर है। और इसका शोषण किया जा सकता है। आदमी है कमजोर, आदमी बहुत सी बातों में कमजोर है। आदमी के मन में लोभ है। उसके लोभ का शोषण किया जाता। उससे कहा जाता, एक गाय यहां दान कर दो, भगवान हजार गुना दूसरे जन्म में देगा। यह लोभ का शोषण है। आदमी के भीतर ग्रीड है। वह लोभी है। वह चाहता एक पैसा देकर हजार पैसे मिल जाएं तो बहुत अच्छी बात। इसका शोषण किया जाता है कि तुम एक पैसा दान करो हजार पैसा वापस लो। और परलोक में मिलने की बात है, इसलिए कोई झगड़ा खड़ा नहीं होता। कोई लौट कर कहता नहीं कि हजार पैसे हमको मिले नहीं। कोई अदालत में मुकदमा नहीं चलाता। कोई सुप्रीम कोर्ट नहीं है जहां इसकी हम अपील करें कि यह पुरोहित ने हमको लूट लिया, कहा था, एक पैसा दोगे तो हजार मिलेंगे। एक पैसा पुरोहित को मिल जाता है, हजार देने वाले को मिलता है कि नहीं इसका कोई पता नहीं चलता।
लेकिन लोभ हमारा गहरा है, हम सोचते हैं चलो एक पैसा दांव पर लगाओ, अगर स्वर्ग में हजार की व्यवस्था हो सके तो बहुत ही अच्छा। आदमी के भीतर लोभ है, उसका शोषण होता है। आदमी के भीतर ऐसी हजार कमजोरियां हैं। इन हजार कमजोरियों का शोषण होता है। और इस शोषण के कारण धर्म पतित हुआ है।
धर्म मनुष्य का शोषण नहीं है। लेकिन धर्म-पुरोहित मनुष्य का शोषण करता रहा है। धर्म को शोषण से छुटकारा दिलाने की जरूरत है।
मनुष्य के जीवन का शोषण नहीं है धर्म। मनुष्य के जीवन को बल देना है, शोषण नहीं करना है। मनुष्य के जीवन को आलोकित करना है। मनुष्य के जीवन को शक्तिशाली बनाना है। मनुष्य के चित्त को जाग्रत, अभय, मुक्त और स्वतंत्र बनाना है। लेकिन जिसे शोषण करना है वह मनुष्य के चित्त को अभय कैसे दे। तो वह कहता हैः गॉड फियरिंग बनो, ईश्वर से डरो। ईश्वर से क्यों डरो? क्योंकि ईश्वर से डरोगे तो पुरोहित से डरोगे। और अगर ईश्वर से न डरे तो पुरोहित से

कौन डरेगा? ये जो नये लड़के पैदा हुए हैं वे ईश्वर से नहीं डरते, तो वे पुरोहित से भी नहीं डरते हैं। और जब ईश्वर से डरेगा कोई तो पुरोहित से डरेगा। तो ईश्वर से डरने की बात पैदा की जाती है।
और मैं आपसे कहूं, डर से धर्म से कोई भी संबंध नहीं है। क्योंकि जिससे
हम भय करते हैं उससे हम प्रेम कभी कर ही नहीं सकते। जिससे हम भयभीत होते हैं उससे हम घृणा करते हैं, प्रेम कभी नहीं करते। अगर आप परमात्मा से भयभीत हो, तो आपके चित्त में परमात्मा के प्रति घृणा पैदा होगी, प्रेम कभी पैदा नहीं होगा। प्रेम तो उसके प्रति पैदा होता है जिससे हमारे मन में कोई भय नहीं होता। लेकिन पुरोहित कहते हैंः परमात्मा से डरो, नरक से डरो; इससे डरो, उससे डरो; पाप से डरो। सब तरह के डर--आदमी को बिल्कुल ट्रेमलिंग हालत में खड़ा कर दिया, कंप रहा है आदमी, घबड़ा रहा है। और जितना आदमी घबड़ा जाता है, उतना ही उसका शोषण आसानी से किया जा सकता है। अगर वह घबड़ाए न, उसका शोषण नहीं किया जा सकता।
इसलिए एक्सप्लाएटेशन का पहला स्टेप हैः फियर। किसी का शोषण करना, पहले उसको खूब डराओ। जब वह कंपने लगे और प्राण उसके कंपने लगे और हाथ-पैर थरथराने लगे, तब फिर तुम उससे कोई भी काम करवा लो कि हाथ जोड़ो, मूर्ति के सामने खड़े होओ। वह विचारा हाथ जोड़ कर खड़ा हो जाए कि अब जो कुछ है ठीक है, हाथ जोड़ कर खड़ा हो जाऊं। कहो कि हे भगवान, तुम्हीं बचाने वाले, तुम्हीं पतितपावन, तो वह यह भी कहने लगे। घुटने टेको, तो घुटने टेकने ले। फिर जमीन से लगाओ, तो फिर जमीन से लगा ले। भय पहले पैदा कर दो, फिर उससे कुछ भी करवा लो। कोई भी बेवकूफी करवा लो। वह करेगा। क्योंकि भय है। अब भय के लिए राहत चाहिए। इसलिए इधर तीन-चार हजार वर्षों से पंडित और पुरोहित भय पैदा कर रहे हैं मनुष्य में। और इस भय का परिणाम यह हुआ कि मनुष्य का मन परमात्मा के प्रति प्रेम से नहीं घृणा से भर गया। और उस घृणा का बदला अब लिया जा रहा है। इधर लोग कहते हैं कि ईश्वर मर गया, हमको मतलब ही नहीं ईश्वर है। हम नहीं सुनना चाहते ईश्वर की बात।
यह तीन हजार साल से जो भय पैदा किया गया उससे घृणा का नासूर पैदा हो गया, घृणा भर गई मनुष्य के मन में। अब वह घृणा रिएक्ट हो रही है, वह प्रतिक्रिया कर रही। वह कहती, हम नहीं जाते मंदिर; हम नहीं सुनना चाहते, परमात्मा से हमें कोई मतलब नहीं, छोड़ो ये सब बकवास, हम तो जीना चाहते हैं। यह उसकी प्रतिक्रिया है। यह उसका अनिवार्य परिणाम है। यह क्वांसिक्वेंस है। और ये पंडित और पुरोहित और धर्मगुरु, थियोलॉजियन, इसकी करतूत है। और इसका परिणाम यह हुआ है कि धर्म से लोगों का संबंध टूट गया।
मैं आपसे निवेदन करता हूं, धर्म से संबंध जुड़ता है प्रेम से, भय से नहीं। भय अधार्मिक गुण है। प्रेम धार्मिक गुण है। जहां भय है वहां धर्म कभी नहीं हो सकेगा।
इसलिए मैं कहता हूंः अभय, फियरलेसनेस। लेकिन हम घबड़ाते हैं अभय से।
हमको यह डर लगता है कि अगर हमने थोड़ा ही अभय किया तो हम नास्तिक हो जाएंगे।

पूछा है इसमें जगह-जगह कि नास्तिक हो जाएंगे आपकी बातें लोग सुन लेंगे--कि स्वतंत्र हो जाओ, साहसी हो जाओ, तो नास्तिक हो जाएंगे।

मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं, जिसको आस्तिक होना है उसे नास्तिक होने से गुजरना ही पड़ता है। जो आदमी बिना नास्तिक हुए आस्तिक होने के ख्याल में है, वह गलती में है, वह कभी आस्तिक हो ही नहीं सकेगा। आस्तिकता नास्तिकता की अग्निपरीक्षा से निकले बिना कभी पैदा ही नहीं होती। और जो होती है वह झूठी होती है। जिस आदमी ने कभी संदेह भी नहीं किया, विचार भी नहीं किया, प्रश्न भी नहीं उठाया कि जीवन क्या है? परमात्मा क्या है? वह आदमी मान लेता है कि ईश्वर है, इसके मानने का कितना मूल्य है? कोई भी मूल्य नहीं है। इसने कभी पूछा नहीं, खोजा नहीं, जिज्ञासा नहीं की।
तो मैं नास्तिक को आस्तिक का विरोधी नहीं कहता हूं, नास्तिकता को आस्तिकता की सीढ़ी कहता हूं। अनिवार्य सीढ़ी है। जो ठीक से नास्तिक हो पाता है, वह आस्तिक एक दिन जरूर हो जाता है। क्योंकि नास्तिकता में कोई ठहर

नहीं सकता, नास्तिकता एक यात्रा है। उसमें कोई नहीं ठहर सकता। कोई कभी नहीं ठहर सकता। नकार में, निगेशन में कोई कभी ठहर नहीं सकता।
लेकिन नकार में एक यात्रा है। और अगर कोई ठीक-ठीक उस नकार में यात्रा करता चला जाए, तो उसके जीवन में एक दिन नकार मिटता है और पाजिटिव, विधायक का जन्म होता है। और जिस दिन नास्तिकता जाती है और आस्तिकता आती है; लाई नहीं जाती। लाई आस्तिकता झूठी होती है। नास्तिकता में जो जीता है, और उसके प्राण जब सब इनकार कर देते हैं, और किसी बात को मानने को राजी नहीं होते, और सब चीज का निषेध कर देते हैं, तब आखिर में वह खुद ही बच जाता है। उसको तो इनकार नहीं किया जा सकता। कोई यह इनकार नहीं कर सकता कि मैं नहीं हूं। क्योंकि इस कहने में भी कि मैं नहीं हूं, मेरा होना आ जाता है, मैं हूं। जो सब चीजों को इनकार कर देता है उस दिन सिर्फ एक बच रहता है खुद। और जो हिम्मत से सब चीजों को इनकार करता चला जाता है, एक दिन उस इनकार में बच जाता है स्वयं। सब तो हो जाता है नष्ट, सबसे तो टूट जाती है आस्था, बच जाता है खुद। और तब खुद को देखना पड़ता है। खुद को इनकार करने की कोशिश करता है, खुद को इनकार किया नहीं जा सकता। उसका कोई रास्ता नहीं है। कोई अर्थ भी नहीं है। तब इस स्थिति में पहली दफा उसे उस सत्य का अनुभव होता है जिसका इनकार नहीं किया जा सकता, जिसको निगेट नहीं किया जा सकता, जिसको नहीं कहा जा सकता कि नहीं है। इस अवस्था में पहली दफे उसे है का, क्या है, उसका पहली दफे बोध होता है। जिस पर संदेह नहीं किया जा सकता, जो इनडिविटेबल है, जो असंदिग्ध है, उसका उसे पहले पता चलता है। और इसको जान कर वह पहली दफे जानता है कि जीवन में कुछ है जिसे इनकार करना असंभव है। और जिसे इनकार नहीं किया जा सकता उसी का नाम आत्मा है। और जब वह अपने भीतर पाता है कि कुछ है जिसे इनकार नहीं किया जा सकता, तो वह जानता है कि सबके भीतर कुछ है जिसे इनकार नहीं किया जा सकता, वह परमात्मा है। अपने भीतर जिसे इनकार नहीं किया जा सकता, दैट व्हीच कैन नॉट बी निगेटिड, वह तो है आत्मा। और सबके भीतर जिसे इनकार नहीं किया जा सकता, वह है परमात्मा।
नास्तिकता की अग्नि से गुजर कर ही वह आत्मा की आस्था तक पहुंचता है कोई भी मनुष्य। लेकिन आप कहेंगे कि हम तो इस अग्नि से गुजरना नहीं चाहते, हम तो मान लेना चाहते हैं कि आत्मा है। यह मानना बिल्कुल झूठा होगा। और इस मानने के पीछे संदेह हमेशा सरकता रहेगा।
मैं अपने गांव जाता हूं, जहां बचपन में पढ़ा, वहां मेरे एक वृद्ध गुरु हैं जो मुझे बचपन में पढ़ाए। तो जब भी गांव जाता हूं उनके पास जाता हूं। कभी एक दिन, दो दिन रुकता हूं वहां। पिछली बार ऐसा हुआ कि मैं कोई आठ-दस दिन वहां रुका। रोज उनके घर गया। एक दिन गया, दो दिन गया, तीसरे दिन उन्होंने एक आदमी भेजा और एक चिट्ठी भेजी कि कृपा करके अब मेरे घर दुबारा मत आना। चिट्ठी में लिखा कि मुझे खुशी होती है कि आते हो मेरे घर, लेकिन मैं चालीस साल से निरंतर पूजा करता हूं, कल तुम्हारी बातों के बाद जब रात में मैं पूजा करने बैठा, तो मुझे ऐसा शक मालूम होने लगा कि कहीं मैं नासमझी तो नहीं कर रहा हूं, हो सकता है कि यह पत्थर ही हो, मूर्ति ही हो, और मैं व्यर्थ बैठा चालीस साल से घंटी हिला रहा हूं, कहीं यह सब पागलपन तो नहीं है? तो मुझमें संदेह पैदा हो गया, मेरे घर दुबारा अब मत आना। मेरी चालीस साल की आस्तिकता को धक्का पहुंचा।
मैंने उन्हें चिट्ठी वापस लिखी और कहा कि एक दफे और मुझे आने की आज्ञा दें, फिर मैं नहीं आऊंगा। और मैं गया। और मैंने उनसे निवेदन किया, कि एक घंटे की मेरी बात से जो चालीस साल की आस्तिकता डगमगा जाए, उस आस्तिकता का कोई मूल्य है? कोई अर्थ है उस आस्तिकता का? ऐसी कच्ची आस्तिकता परमात्मा तक ले जा सकेगी? वे बोले कि नहीं, मेरी तो बड़ी प्रगाढ़ आस्था थी, लेकिन आपने ऐसी बातें कहीं कि मुझे शक पैदा हो गया। मैंने कहा कि कोई दूसरा मनुष्य किसी में शक पैदा कर सकता है, अगर शक उसके भीतर छुपा ही न हो। मैंने उनसे कहा कि कृपा करके फिर से एक दफे सोचें, चालीस साल आपने पूजा जरूर की है, लेकिन पहले दिन जब आप पूजा करने बैठे थे आपके भीतर संदेह था या नहीं?

उन्होंने कहाः थोड़ा-बहुत संदेह तो रहा होगा। तब मैं जवान था, शक तो होता था, पिता ने कहा था कि पूजा करो, इसलिए शुरू की थी। सोचा था कि चलो, कहते हैं, नहीं मानते हैं तो करो, लेकिन भीतर तो संदेह था।
तो मैंने कहाः वह संदेह चालीस साल में भी मर नहीं सकता है। आप पूजा करते गए, संदेह को दबाते गए, दबाते गए, वह भीतर मौजूद है। कल मैंने बात की, वह चालीस साल पहले का संदेह वापस ऊपर आ गया और कहने लगा कि शक, संदेह है। असल में जो आस्तिक नास्तिकता से नहीं गुजरता उसका भीतर का संदेह कभी
भी नष्ट नहीं हो सकता है, उसके भीतर संदेह रहेगा। और संदेह रहता है इसलिए वह कहता हूं कि मैं बहुत गहरी आस्था करता हूं, मेरी बड़ी प्रगाढ़ आस्था है, मेरी अनन्य श्रद्धा है, ये सारी बातें वह उसी संदेह को छिपाने के लिए कहता है कि अनन्य श्रद्धा है, बड़ी प्रगाढ़ आस्था है, बड़ी सुदृढ़ आस्था है, ये सारी बातें क्यों कहता है वह? यह इसलिए कहता ताकि वह उसको छिपा सके, छिपा सके, उसको ढांक सके, ढांक सके, वह भीतर बैठा रहेगा संदेह।
आस्तिक के भीतर संदेह हमेशा मौजूद रहता है। लेकिन नास्तिक संदेह से शुरू करता है, संदेह से ही प्रारंभ करता है। संदेह को छिपाता नहीं, संदेह से संघर्ष लेता है, संदेह को ऊपर लाता है। और उस सीमा तक संदेह के साथ चलता है जहां तक संदेह जा सकता है। एक ऐसी जगह है जहां संदेह आगे नहीं जाता, वह जगह खुद की आत्मा है। वहीं जाकर नास्तिक हार जाता है और मुश्किल में पड़ जाता है। वहां तक नास्तिकता जो ले जाता है, उस सीमा तक जिसके आगे नास्तिकता नहीं जा सकती, उसके बाद जो आस्तिकता का अवतरण होता है, वही वास्तविक आस्तिकता है। और उसमें फिर कोई संदेह बचता नहीं, क्योंकि संदेह की यात्रा कर ली गई, आखिरी सीमा तक संदेह का पीछा कर लिया गया, उसका रंचमात्र भी बचाया नहीं गया है संदेह का, उसको देख लिया गया आखिर तक, उसका कुछ बचा नहीं, वह हवा हो गया। तब, तब जो बच रहता है, तब जो बच रहता है वही, वही है धर्म।
तो साहस और अभय से घबड़ाएं न। मैं तो चाहता हूं कि दुनिया एक बार ठीक से नास्तिक हो जाए, तो शायद दुनिया में वास्तविक आस्तिकता का जन्म हो सके। जो थोड़े से लोग ठीक से नास्तिक हुए हैं, वे ही लोग आस्तिक भी हुए हैं। और जैसे आस्तिक हमें दिखाई पड़ते हैं चारों तरफ, अगर ये ही आस्तिक हैं, तो हद्द हो गई। सारी दुनिया में आस्तिक हैं--कोई हिंदू है, कोई ईसाई, कोई मुसलमान, कोई कैथोलिक, कोई प्रोटेस्टेंट। सभी किसी मंदिर में जाते हैं, सभी किसी चर्च में जाते हैं। लेकिन ये सब आस्तिकों ने मिल कर जो दुनिया बनाई है उसमें धर्म है? अगर ये ही आस्तिक हैं, तो यह दुनिया इतनी अधार्मिक क्यों है? यह दुनिया इतनी बदतर क्यों है? इस दुनिया में धर्म कहां दिखाई पड़ता है? आस्तिक तो सब दिखाई पड़ते हैं। नास्तिक कितने हैं? कोई दिखाई नहीं पड़ता। कभी दो-चार कोई नास्तिक होते होंगे तो होते होंगे, वे भी बूढ़े होते-होते आस्तिक हो जाते हैं। नास्तिक कहां हैं? मैं तो अब तक खोजता हूं मुझे नास्तिक मिला नहीं। जब नास्तिक ही नहीं मिला तो मैं निराश हो गया। मैंने कहा, आस्तिक तो मिलेगा क्या, आस्तिक तो दूसरी सीढ़ी है। नास्तिक तो पहली सीढ़ी है। जब पहली सीढ़ी पर ही कोई खड़ा नहीं दिखाई पड़ता तो दूसरी सीढ़ी पर पहुंचने का सवाल कहां है?
झूठे आस्तिक हैं। इसलिए दुनिया में आस्तिक तो हैं लेकिन धर्म बिल्कुल नहीं है। सच्चा आस्तिक तो सच्ची नास्तिकता से निकलता है। इसलिए घबड़ाए न, नास्तिक होना आस्तिक होने के विरोध में नहीं है। हां, कमजोर नास्तिक न हों, नास्तिक हों तो पूरे ही नास्तिक हों। और आखिरी सीमा तक संदेह का ले जाएं। तो आप पाएंगे कि आखिरी सीमा पर संदेह जाकर एक क्रांति घटित हो जाती है।
जैसे हम पानी को गर्म करें, तो सौ डीग्री पर पानी गर्म होकर भाप बन जाता है। लेकिन अगर सौ डिग्री तक गर्म न करें, तो पानी पानी रह जाता है। कुनकुना होकर रह जाता है, भाप नहीं बनता।
कुनकुने नास्तिक हैं थोड़े से दुनिया में, जो थोड़ी-बहुत संदेह करते हैं, लेकिन पूरा संदेह नहीं करते। कुनकुने नास्तिकों से कुछ नहीं होने वाला। नास्तिक चाहिए सौ डिग्री वाला। सौ डिग्री तक संदेह को ले जाए, तो

पानी भाप बन जाता है। नास्तिकता आस्तिकता में परिवर्तित हो जाती है। एक विस्फोट होता है, एक क्रांति होती है। एक चैंज, एक ट्रांसफार्मेशन होता है, एक परिवर्तन होता है।
इसलिए मुझसे यह न कहें कि इसमें नास्तिक हो जाने का डर है। मैं तो चाहता हूं कि आप नास्तिक हो जाएं। क्योंकि मैं चाहता हूं कि परमात्मा करे आप कभी आस्तिक हो सकें।
अब इसमें बड़ी गड़बड़ दिखाई पड़ेगी आपको। इसमें यह दिखाई पड़ेगा कि मैं तो नास्तिकता सिखा रहा हूं।
मैं नास्तिकता सिखा रहा हूं, क्योंकि मैं देखता हूं कि नास्तिकता सीखे बिना कभी कोई आस्तिक नहीं होता है। और अगर हो जाता है तो वह आस्तिकता झूठी और थोथी होती है, दो कौड़ी की होती है। उसका कोई भी मूल्य नहीं होता। नास्तिकता मेरी दृष्टि में सीढ़ी है।
साहस चाहिए पूछने का, जिज्ञासा करने का, जीवन से समस्याओं को खड़े करने का। अंधा, अंधा विश्वास नहीं चाहिए, खुली हुई आंख वाला विचार और विवेक चाहिए।
नास्तिक ईश्वर का विरोधी नहीं है। नास्तिक केवल यह कह रहा है कि मेरी समझ में नहीं आता कि ईश्वर है? यह तो बड़ी ठीक बात है। समझ में आपको आ रहा है कि ईश्वर है? नहीं, आपको भी नहीं आ रहा। आ रहा होता तो आपका जीवन दूसरा हो जाता, आप कुछ से कुछ हो जाते। समझ में आपको भी नहीं आ रहा ईश्वर है! लेकिन आप मान लेते हैं कि होगा। बुजुर्ग कहते हैं, और बुजुर्ग भी इसी तरह माने हुए हैं कि होगा, क्योंकि उनके बुजुर्ग कहते थे। और वे बुजुर्ग भी इसीलिए माने थे कि उनके बुजुर्ग कहते थे। ये सब पीछे की तरफ जाने वाली जो श्रद्धाएं हैं, ये जड़ और मुर्दा होती हैं।
ज्ञान जाता है आगे की तरफ, श्रद्धा जाती है पीछे की तरफ। जीवन है आगे, पीछे तो सब मुर्दा हो गया, मृत्यु है पीछे। पीछे तो सब डेड पास्ट है, मरा हुआ अतीत है। विश्वास जाता है पीछे की तरफ, इसलिए विश्वास मुर्दा है। और विचार जाता है आगे की तरफ, इसलिए विचार जीवित है।
तो मैं आपसे कहता हूं, आगे की तरफ विचार को ले जाएं पीछे की तरफ विश्वास को नहीं। जीवन की दिशा आगे की तरफ है। खोज की दिशा आगे की तरफ है। अन्वेषण की दिशा आगे की तरफ है। और अंधेपन की दिशा पीछे की तरफ है। पीछे की तरफ जाने से सत्य का उदघाटन नहीं हो सकता है। आगे की तरफ, और आगे की तरफ, निरंतर आगे की तरफ। साहस से, अभय से, हिम्मत से आगे बढ़ते जाना है मनुष्य को। और धर्म और धार्मिक लोग चूंकि पीछे की तरफ देखने लगे, इसलिए धर्म पिछड़ गया। दौड़ में पिछड़ गया।
अब मेरी बातें बहुत कटु मालूम हो सकती हैं। लेकिन धर्म के प्रति मेरा इतना प्रेम है इसलिए इतनी कड़वी बातें भी कहना जरूरी समझता हूं। धर्म नष्ट हो रहा है धार्मिकों के द्वारा। तथाकथित धार्मिक लोग धर्म को डुबा रहे हैं। क्या किया जाए? क्या रास्ता बने? क्या हो कि जीवन में धर्म बढ़ सके? एक बात दिखाई पड़ती हैः विश्वास से धर्म का संबंध टूट जाना चाहिए। विचार से संबंध जुड़ना चाहिए; विवेक से संबंध जुड़ना चाहिए; ज्ञान से संबंध जुड़ना चाहिए; खोज से; अभय से; प्रेम से संबंध जुड़ना चाहिए।
इन तीनों में इसी संबंध में थोड़ी सी बातें आपसे कही हैं। कुछ और थोड़े प्रश्न रह गए, उनकी कल सुबह मैं चर्चा करूंगा।
एक अंतिम बात कह देनी जरूरी है और वह यहः कोई यह न सोचे कि आपके प्रश्नों के मैं उत्तर दे दूंगा; कोई दूसरा किसी के प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकता। मैं अपनी दृष्टि आपके सामने रख रहा हूं। ये मेरे उत्तर हैं, आपके लिए इनका उत्तर होना जरूरी नहीं है। इसलिए कोई मेरे उत्तरों को स्वीकार करने की जल्दबाजी न करें और न अस्वीकार करने की जल्दबाजी करें। सोचें, विचारें उनको। स्वीकार न करें। क्योंकि जल्दी से जो स्वीकार कर लेता है वह आदमी कभी खोज नहीं कर सकता। तो मेरी बातें स्वीकार करने को नहीं हैं। एक बात।
दूसरी बात, प्रश्न तो आपका है, इसलिए जब आपके भीतर उत्तर आएगा तभी प्रश्न समाप्त होगा। इसलिए कोई सोचता हो कि मेरे उत्तरों से आपके प्रश्न

समाप्त हो जाएंगे और शांत हो जाएंगे, तो वह गलती में है। कोई सोचता हो कि मेरे उत्तरों से आपका संतोष हो जाएगा, तो गलती में है। मैं आपका शत्रु नहीं हूं कि आपको संतुष्ट कर दूं। क्योंकि अगर मैं आपको संतुष्ट कर दूं तो आपके हृदय की खोज बंद हो जाएगी और मैं आपका दुश्मन सिद्ध हो जाऊंगा।
तो मैं क्या कर रहा हूं इन उत्तरों को देकर? इन उत्तरों को देकर यह कोशिश कर रहा हूं कि आप और असंतुष्ट हो जाएं, और डिससेटिस्फाइड हो जाएं। आप काफी असंतुष्ट नहीं हैं, नहीं तो जिंदगी कभी की बदल लेते। आप बहुत कम असंतुष्ट हैं। आप बहुत संतुष्ट हैं, यही तो मुर्दापन है। तो मैं तो चाहता हूं आप और असंतुष्ट हो जाएं। आप में जो थोड़ा-बहुत संतोष है, मैं पूरी कोशिश करूंगा कि उसको और छिन्न-भिन्न कर दूं, इधर-उधर डांवाडोल कर दूं, आपका चित्त बहुत व्याकुल हो जाए, असंतुष्ट हो जाए, एक डिसकंटेंट पैदा हो जाए। उस असंतोष से ही आपके भीतर खोज का जन्म होगा।
तो मेरे उत्तर आपको संतुष्ट करने के लिए नहीं है, असंतुष्ट करने के लिए ही है। मैं चाहता ही यह हूं कि आप बिल्कुल असंतुष्ट हो जाएं कि आपको चैन न रहे।

कल किसी ने मुझे कहा कि रात भर मुझे नींद नहीं आई।

मैंने कहा, बहुत अच्छा। जीवन भर तुम्हें नींद न आए तो अच्छा। कि आपकी बातों से मुझे रात की मेरी नींद खराब हो गई। परमात्मा करे जीवन भर के लिए तुम्हारी नींद खराब हो जाए। क्योंकि जिसकी नींद खराब हो जाए सत्य की खोज के लिए, वह एक दिन जरूर सत्य को पा लेगा। लेकिन जो निश्चिंतता से सोता है और कैजुअली कभी-कभी पूछ लेता है कि सत्य क्या है, परमात्मा क्या है, वह कभी नहीं पा सकता। उसके भीतर कोई प्यास नहीं है। कोई असंतोष नहीं है। इसलिए मुझे एक बहुत थैंकलेस जॉब जिसको कहते हैं, एक बहुत धन्यवाद रहित काम करना पड़ रहा है। और वह काम यह है कि मैं आपको असंतुष्ट करना चाहता हूं।
गुरुजन आपको संतोष देने आते हैं। मैं बड़ा खराब आदमी हूं, मैं तो असंतोष देने आता हूं। आप जाते होंगे साधु-संतों के सत्संग में कि चित्त शांत हो जाए, और मेरी तो पूरी कोशिश है कि अच्छी तरह अशांत हो जाए। क्योंकि अगर अशांत हुआ, तो किसी दिन शांति तक पहुंच सकता है। लेकिन अगर अशांति छिप गई और थोथी शांति आ गई, तो कभी भी वास्तविक शांति उपलब्ध नहीं होगी। जिन्हें खोजना है उन्हें आकांक्षा और अभीप्सा से भरना होगा। और आकांक्षा और अभीप्सा से वही भरते हैं जो प्यासे हो उठते हैं।
एक छोटी सी कहानी और आज की चर्चा मैं पूरी करूं।
एक फकीर एक नदी के किनारे बहुत वर्षों से रहता था। एक युवक उसके पास आया और उससे पूछा कि क्या परमात्मा है? उस फकीर ने कहा कि मेरे मित्र, मेरे उत्तर देने की तरकीब बड़ी गड़बड़ है। क्या तुम मेरे उत्तर की तरकीब को झेलने को राजी हो? वह आदमी थोड़ा डरा, उसने सोचा था कि वह कुछ सैद्धांतिक बातें कहेगा, कुछ गीता वगैरह के श्लोक सुनाएगा या कोई और अच्छी-अच्छी बातें बताएगा और थोड़ा समय कटेगा और मनोरंजन होगा जैसा कि सत्संग में सभी लोगों का मनोरंजन होता है और समय कटता है। वह भी इसी ख्याल से गया था। दिन भर के थके कुछ लोग सिनेमा देखते हैं, कुछ लोग सत्संग करते हैं। बात दोनों एक सी हैं, दोनों समय काटते हैं। वह भी गया था कि थोड़ा सत्संग हो जाएगा। लेकिन यह आदमी कुछ गड़बड़ था। उसने कहा कि मेरा उत्तर देने का ढंग बड़ा गड़बड़ है। क्या तुम राजी हो? वह थोड़ा तो हिचकिचाया। लेकिन अब जब सामने ही पहुंच गया था, तो अब यह कहना कि मैं राजी नहीं हूं, जरा संकोच लगा। फिर जवान आदमी था, सोचा, क्या करेगा, ज्यादा से ज्यादा क्या करेगा, आखिर कुछ बात ही कहेगा। उसने कहाः अच्छा मैं राजी हूं। वह फकीर हंसने लगा, उसने कहाः तुम कहते हो, अच्छा मैं राजी हूं, इसी से पता चलता है कि राजी तुम हो नहीं। अच्छा मैं राजी हूं, यह क्यों कहते हो? खैर मैं मान लेता हूं कि तुम राजी हो। मैं स्नान करने नदी पर जा रहा हूं, तुम भी चलो, पहले स्नान कर लें और फिर मैं तुम्हें बताऊंगा। और अगर मौका हाथ लग गया तो नदी में स्नान करते वक्त भी बता सकता हूं।

वह युवक थोड़ा घबड़ाया कि यह आदमी पागल तो नहीं है। हम पूछते हैं परमात्मा, यह बातें कर रहा है कि नदी में नहाते वक्त मौका हाथ लग गया तो बता दूंगा। कोई दुश्मनी बताएगा, कोई झगड़ा करेगा, क्या करेगा, क्या नहीं करेगा। लेकिन फंस गया था हाथ में। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है, जाते हैं सत्संग को फंस जाते हैं गलती हाथों में, तो वह आदमी भी फंस गया। अब इधर भी बहुत से लोग हो सकते हैं इसी भांति फंस गए हों। दिल तो हमारा भी यह होता है कि नदी के किनारे ले चलो और वहीं बता दें, लेकिन नदी एकदम पास नहीं होती हमेशा। और सब लोग जाने को शायद राजी भी हों या न हों। तो वह फकीर... मगर वह फकीर अकेला ही था। और वह आदमी भी अकेला था। और वह फकीर ऐसा था कि वह आदमी भागता तो भी भागने न देता, वह उसको उस दिन परमात्मा का कुछ न कुछ दर्शन कराता ही। वह उसको ले गया। हाथ पकड़ लिया, कि हो भी सकता था जिज्ञासु भाग जाए। कई जिज्ञासु बीच में ही भाग जाते हैं। वे पूरी-पूरी जिज्ञासा भी नहीं कर पाते। उनको अगर खतरा दिखाई पड़े तो भाग जाते हैं। परमात्मा सस्ते में मिलता हो, बिना मेहनत किए अगर मिलता हो, माला खरीद कर और माला के गुरिए फेरने से मिलता हो, मंदिर में जाकर किसी मूर्ति के सामने बैठने से मिलता हो। या और इसी तरह का कोई सस्ता नुस्खा, कोई शार्टकट बिना खर्च का मिल जाता हो तो वे तैयार हो जाते हैं परमात्मा को खोजने के लिए। लेकिन अगर कुछ श्रम पड़ जाता हो, कुछ करना पड़ता हो जीवन में, कोई क्रांति लानी पड़ती हो तो कौन परमात्मा को लेने को राजी होगा। वह कहेगा, ठहरो, फिर अगले जन्म में देखेंगे, ऐसी जल्दी भी क्या है। ऐसी क्या जल्दी है परमात्मा की, जन्म-जन्म पड़े हुए हैं, देख लेंगे फिर, अभी तो कुछ और काम कर लें। हां, अगर माला-वाला फेरने से मिलता हो तो ठीक है, रात को बैठ कर थोड़ा फेर लेंगे। जैसा ताश खेल लेते हैं वैसा माला फेर लेंगे।
पर व फकीर उसको ले गया और हाथ उसने पकड़ लिया कि कहीं बीच से भाग न जाए। कुछ फकीर गड़बड़ होते हैं, हाथ पकड़ लें तो मुश्किल से छोड़ते हैं। आप कितना ही छुड़ाने की कोशिश करो, कितने ही प्रश्न पूछो, कुछ करो, वे छोड़ते ही नहीं। वह ले गया उसको नदी के किनारे। उसको पहले कहा कि तू पहले भई पानी में उतर जा, पीछे मैं उतरूंगा, फकीर ने कहा। क्योंकि कई दफे ऐसा होता है, कोई जिज्ञासु, हम तो पानी में उतर जाते हैं वे किनारे से ही भाग जाते हैं। मुझको भी रोज अनुभव होता है, बहुत से जिज्ञासु किनारे से ही भाग जाते हैं, नदी में उतरने की तैयारी नहीं करते।
लेकिन वह फकीर होशियार था। उसने उसको पहले उतार लिया, फिर पीछे उतरा। कहा, अब नहाओ बिल्कुल बेफिकर होकर, घबड़ाओ मत। प्रश्न पूछ लिया है तो घबड़ाओ मत, उत्तर हम देंगे, लेकिन अभी ठीक से नहा लो। वह निश्चिंत होकर नहाने लगा, उस फकीर ने उचक कर उसकी गर्दन पानी के भीतर पकड़ ली और उसको दबाने लगा। फकीर वैसी ही तगड़ा था। फकीर वैसी ही तगड़े होते ही हैं। क्योंकि गृहस्थी बेचारे को पच्चीस मुश्किलें होती हैं, पच्चीस संसार की झंझटें होती हैं। कमाओ, यह करो, वह करो, यह सब भी होता है। और फिर फकीरों को खिलाओ, यह भी एक मुसीबत लगी रहती है। वह फकीर तगड़ा था, फकीर हमेशा ही तगड़े होते हैं। फकीर तगड़े होंगे हीं। गृहस्थी सबका शोषण करता है, फकीर गृहस्थी का शोषण करता है। वह तो तगड़ा होगा ही। वह तगड़ा बहुत था। उसने उसको दबा दिया नीचे। अब जिज्ञासु को पता चला कि यह तो बड़ी मुश्किल हो गई, यह तो पाठ पढ़ाने लगा। वह निकलने की कोशिश करने लगा, लेकिन जिज्ञासु दुबला था, जैसा कि सभी जिज्ञासु दुबले होते हैं। अगर तगड़े हों तो खुद ही न खोज लें, दूसरे से क्या पूछने जाएं। कमजोर होते हैं इसलिए दूसरे से पूछने जाते हैं। वह कमजोर तो था, इसलिए पूछने आया था। फकीर ने उसे पकड़ कर नीचे दबाया। दबाता गया, एक सेकेंड, दो सेकेंड, दस सेकेंड, प्राण छटपटाने लगे होंगे, श्वास लेने के लिए पागल हो उठा होगा। कमजोर था तो क्या हुआ, जब प्राणों पर बन आती है तो कोई भी ताकतवर हो जाता है। थोड़ी देर में फकीर को पता चलने लगा कि वह ऊपर उठ रहा है, फकीर की ताकत काम नहीं पड़ रही है। वह नीचे दबा रहा है, लेकिन हाथ कमजोर पड़ने लगे। आखिर फकीर के लिए तो एक मजाक थी। उसके लिए तो प्राणों की समस्या बन गई थी। सारी ताकत इकट्ठी हो गई, रोआं-रोआं इकट्ठा हो गया, शरीर का कण-कण

इकट्ठा हो गया। सारी ताकत, मृत्यु सामने खड़ी थी, अब ताकत को बचा कर भी क्या करेंगे आगे के लिए। सारी ताकत इकट्ठी हो गई। वह जिज्ञासु उठने लगा। फकीर ने पाया कि आखिर में वह ऊपर निकल आया है। फकीर ने उसे छोड़ दिया। जिज्ञासु को तो कुछ समझ में भी नहीं आया कि थोड़ी देर क्या कहें? भजन करें कि गालियां दें कि क्या करें? उसको कुछ समझ में नहीं पड़ा। फकीर सामने खड़ा था, यमदूत की भांति दिखाई पड़ रहा था। पहले सोचा था सत्संग करने जा रहे हैं, कोई महात्मा हैं। ये महात्मा खतरनाक निकले। ये तो मौत दिए देते थे। हम पूछने आए थे परमात्मा को, और ये हमें परम मुक्ति दिलवाए दे रहे थे।
लेकिन इसके पहले कि वह जिज्ञासु कुछ पूछे, उस फकीर ने पूछा, मेरे मित्र, एक प्रश्न मुझे भी पूछना है। जब पानी के भीतर थे, तो कितने विचार तुम्हारे भीतर उठे? उसने कहाः विचार? मरते आदमी के मन में विचार उठते हैं? कोई विचार नहीं उठे। फकीर ने पूछाः कोई एकाग्रता की थी, कोई राम-राम का नाम जपते थे, क्या बात थी विचार नहीं उठे? चित्त तो हमेशा से चंचल है। चित्त चंचल नहीं हुआ? तो उसने कहाः आप भी क्या बातें कर रहे हैं? ऐसी घड़ी में कहीं चित्त चंचल होता है। और चित्त को चंचल होने के लिए फुर्सत चाहिए। वहां फुर्सत एक सेकेंड की न थी। वहां प्राण संकट में थे। चित्त चंचल होता? चित्त बिल्कुल थिर हो गया था। बिना किसी तरकीब के चित्त थिर हो गया था। कोई कनसनट्रेशन नहीं करना पड़ा, कोई एकाग्रता नहीं, कोई योग, कोई आसन, कुछ भी नहीं करना पड़ा, चित्त एकदम एकाग्र हो गया था। फिर क्या ख्याल थे?
उस आदमी ने कहाः पहले तो थोड़े देर तक ख्याल था कि किसी भांति एक श्वास हवा मिल जाए। लेकिन फिर वह ख्याल भी खो गया। फिर तो पूरे प्राण किसी अनजानी आकांक्षा और अभीप्सा से भर गए। कोई प्यास ऊपर उठने की, उसके लिए कोई शब्द नहीं थे। कोई विचार नहीं बनता था भीतर बस सारे प्राण ऊपर उठना चाह रहे थे और उठ रहे थे। मेरा वश नहीं था, मैं न नीचे रुक सकता था, न ऊपर उठ सकता था। मेरे द्वारा कुछ भी नहीं हो रहा था। कोई अनजानी ताकत ऊपर उठा रही थी। और आखिर मैं ऊपर आ गया। उस फकीर ने कहाः जाओ। ईश्वर के संबंध में जो हमें कहना था कह दिया। जिस दिन इतनी ही प्यास, इतनी ही अभीप्सा और इतने ही प्राणों को संकट में पाओगे, इतनी ही क्राइसिस में जब अपने को पाओगे, तब तुम पाओगे कि तुम्हें ईश्वर तक जाने की जरूरत नहीं। कोई ताकत तुम्हें ऊपर की तरफ उठा रही है और लिए जा रही है। तुम सिर्फ हवाओं में बहते हुए एक पत्ते की भांति हो जाओगे। परमात्मा तुम्हें अपनी तरफ खींच लेगा। लेकिन प्यासे तो हो जाओ। जहां प्यास है वहां परमात्मा है। और अगर परमात्मा न मिलता हो, तो जान लेना कि प्यास नहीं है। फिर चाहे मूर्ति बनाओ, चाहे कुछ भी करो, परमात्मा नहीं मिलेगा। जहां प्यास है वहां परमात्मा तत्क्षण उपस्थित हो जाता है। लेकिन जहां प्यास नहीं है वहां कितने ही ऊंचे मंदिर बनाओ, आकाश छूने लगें मंदिर, तो भी परमात्मा अनुपस्थित रहता है, एब्सेंट रहता है। प्यास ही उसे पाने की प्रार्थना है। इसलिए मैंने कहा, असंतोष। इसलिए मैंने कहा, नास्तिकता। इसलिए मैंने कहा, संदेह। इसलिए मैंने कहा, विचार। इसलिए मैंने कहा, विश्वास नहीं, मानना नहीं; खोजना, जिज्ञासा, खोजते ही चले जाना, अंतिम क्षण तक संदेह करते चले जाना अगर सत्य को पाना हो। क्योंकि जिस दिन प्यास पूरी हो उठेगी, उस दिन परमात्मा वहीं उपलब्ध हो जाएगा जहां, जहां आप हैं। इसलिए एक डिसकंटेंट, एक डिवाइन डिसकंटेंट चाहिए, एक दिव्य असंतोष चाहिए।
ये धार्मिक लोग इतने संतुष्ट मालूम पड़ते हैं, अपने टीका लगाए, मालाएं लिए हुए इतने संतुष्ट कि इनको मुर्दा माना जा सकता है, इनमें कोई जिंदगी नहीं है। धर्म मर गया है, और धर्म मर जाएगा, अगर लोगों में ठीक से संदेह, असंतोष, नास्तिकता पैदा नहीं हो सकी तो। इसलिए मेरा काम तो यही है, नदी तो नहीं है लेकिन यहीं कोशिश तो पूरी करता हूं कि आपकी गर्दन दबा दूं। कोशिश तो यही करता हूं कि सांसें घुट जाएं, कोशिश तो यही करता हूं कि प्राण तड़फड़ा जाएं।
इसलिए मुझसे यह प्रश्न मत पूछिए कि आपकी बातें सुन कर असंतोष होता है, बड़ी तबीयत बेचैन होती है। यही तो मैं चाहता हूं। यह प्रश्न सुन कर तो मुझे बड़ी खुशी होती है कि चलो कुछ काम हो रहा है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत आनंदित हूं।
परमात्मा करे जिस तरफ इशारा कर रहा हूं तो शायद आप मेरे शब्दों को छोड़
कर उस इशारे को देखने में समर्थ हो जाएं। सोचें, विचारें, खोजें।
कुछ और आपके प्रश्न होंगे तो कल सुबह उनके उत्तर दूंगा।
एक बात ध्यान में रखें, मेरी बात मानने को नहीं है। इसलिए मेरा आपसे कोई झगड़ा भी पैदा नहीं होता। मेरी बात मानने को नहीं है। सोचें और विचारें। परमात्मा करे कभी वह प्रकाश आपके भीतर पैदा हो जो जीवन की कृतार्थता है, सार्थकता है, जो जीवन की आस्तिकता है, जो जीवन के पाने का अभिप्राय है। परमात्मा सबके भीतर उस परम शांति को और संतोष को लाए, लेकिन उसे लाने के मूल्य के रूप में आपको असंतुष्ट होना पड़ेगा, खोजना पड़ेगा। जो खोजता है उसे मिलता है। क्राइस्ट ने कहा है--उनके वचन से मैं अपनी बात पूरी करता हूं--नॉक एण्ड दि डोर शैल बी ओपन, खटखटाओ और द्वार खुल जाएंगे। लेकिन जो नहीं खटखटाते वे अभागे हैं, उनके द्वार बंद रह जाते हैं।
सबसे अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा के प्रति मेरे प्रणाम स्वीकार करें।